भारतीय इतिहास के निर्माता

गुरु राम सिंह और कूका विद्रोह



रामशरण विद्यार्थी



श्री सतगुरू राम सिंह जी की द्वितीय प्रकाश शताब्दी को समर्पित



प्रवचन श्री सतगुरु उदय सिंह जी

श्री सतगुरु राम सिंह जी ने नाम-वाणी एवं सेवा-सिमरण के साथ जोड़कर केशाधारी सिक्खी वाले नामधारी संत खालसा की स्थापना की। आप ने सत्य बोलने, धर्म की कमाई करने तथा जरूरत मंदो की सेवा करने के लिए प्रेरित किया। देश की स्वतंत्रता, गुरमति-रहत-मरियादा एंवम गो-ग्रीब की रक्षा ही आपका मुख्य उदेश्य था। लोकचार, अंधविश्वास, भ्रम एवं व्यर्थ के रीतिरिवाजों से मुक्त करवाकर गुरुमत का मार्ग प्रशस्त किया एवं भारत की स्वतन्त्रता के लिए सर्वप्रथम अ-सहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया।

भारतीय इतिहास के निर्माता

गुरू राम सिंह और कूका विद्रोह

रामशरण विद्यार्थी

प्रकाशक
विश्व नामधारी संगत (रजि.)
श्री भैणी साहिब

गुरू राम सिंह
और कूका विद्रोह

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक महान् सेनानी सद्गुरू राम सिंह जी के विषय में लोग बहुत कम जानते हैं। इसका एक कारण यह है कि विदेशी शासन ने इस बात की पूरी कोशिश की कि लोग उन्हें भूल जाएं। सन् 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेज शासन को सर्वप्रथम गुरू राम सिंह के अनुयायी कूका विद्रोहियों का सामना करना पड़ा था। कूका सिक्ख बड़े ही देश भक्त और स्वतंत्रता के लिए बलिदान की प्रेरणा देने वालों में अग्रणी थे। सद्गुरू जी के नेतृत्व में सबसे पहले उन्होंने विदेशी वस्त्रों और सरकारी दफ्तरों का बहिष्कार और असहयोग का प्रयोग आजादी की लड़ाई के अस्त्र के रूप में किया। उन्होंने अपनी डाक व्यवस्था और अदालतें भी चलाई। अंग्रेजों ने उनका बड़ी क्रूरता से दमन किया। 17 जनवरी, 1872 को बहुत से कूके, बिना किसी अदालत के न्याय के, तोपों से उड़ा दिए गए। इस बलिदान को अब डेढ़ सौ वर्ष से ज्यादा हो गए। इस अवसर पर 'भारत के इतिहास निर्माता ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत हम सद्गुरू राम सिंह जी का जीवन–चरित्र प्रकाशित कर रहे हैं, जो देश से निकाल दिए गए और बर्मा में 14 साल नज़रबन्द रहे।

यद्यपि गो रक्षा कूका आन्दोलन के कार्यक्रम का एक अंग था, लेकिन इस आंदोलन को किसी प्रकार भी साम्प्रदायिक नहीं कह सकते। इतिहास के क्रम में बड़ी–बड़ी घटनाएं अक्सर छोटे–छोटे कारणों को लेकर शुरू हुई, जैसे 1857 का विद्रोह। यद्यपि इसका आरम्भ चर्बी के कारतूसों के कारण धार्मिक भावनाएं उभरने से हुआ, पर यह विद्रोह किसी रूप में साम्प्रदायिक न होकर पूरी तरह राष्ट्रीय था। धार्मिक भावना ने तो विस्फोटक परिस्थिति में सिर्फ एक चिन्गारी का काम किया।

पुस्तक लिखने में नामधारी सिक्खों के प्रधान कार्यालय, दिल्ली, से जो सहायता मिली है उसके हम आभारी हैं।

–सम्पादक

विषय सूची

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अंग्रेजों ने भारत भूमि पर विजय प्राप्त की, परन्तु वे इस देश की आत्मा पर विजय न प्राप्त कर सके। दिल्ली पर उनके शासन की अभी शताब्दी भी पूरी नहीं हो पाई थी कि यहाँ के सपूतों के मुक्ति–संग्राम के सामने उन्हें झुकना पड़ा और वे भारत छोड़ने को मजबूर हुए।

विदेशी शासन के प्रति विरोध ने विविध रूप धारण किए। प्रतिक्रिया का मुख्य रूप मनोवैज्ञानिक क्रांति थी जिससे एक तरह की नैतिक जागृति हुई। भारतवासियों में अतीत का गौरव और आत्मसम्मान जाग उठा। देश ने अपने सत्य, सनातन सिद्धान्तों को पाश्चात्य भौतिकवाद के विरूद्ध पुनर्स्थापित किया। इस नव–जागृति ने विदेशी शासन के विरूद्ध केवल अहिंसात्मक आंदोलन का नहीं, किन्तु सशस्त्र संग्राम का रूप ले लिया। यह संग्राम भारतव्यापी था और इसमें पंजाब, देश के किसी अन्य भाग से पीछे नहीं था। भारत में जहां भी अत्याचार हुआ, वहाँ उसके विरोध में मरने वालों की कभी कमी नहीं रही। भारत सदा से धर्म मूलमंत्र रहा है।

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटे उजारा होय।।

जब अंग्रेज भारत में अपने राज्य की नींव डाल रहे थे उस समय पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह का एकछत्र राज्य था। देश समृद्धिशाली और धन–धान्यपूर्ण था। रणजीत सिंह की सेना में शामिल होने में पठान और विदेशी भी गर्व अनुभव करते थे। उनका शासन न्याय पर आधारित था। वह हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखते थे। रणजीत सिंह के शासन का इतना प्रबल प्रभाव था कि चोर और डाकू भी अपना अपराध स्वीकार कर सेना में भर्ती हो जाते थे। रणजीत सिंह की धारणा थी क़ि यदि प्रजा दुखी है तो राजा को अवश्य ही नरक को प्राप्त होगा। उन्होंने अपने राज्य में गोवध बन्द कर रखा था। इस आज्ञा का कारण धार्मिक भावना के अतिरिक्त मानवहित की चेतना थी। महाराजा रणजीत सिंह की वैभवशाली राज्य और प्रभावशाली व्यक्तित्व अंग्रेजों पर पठानों की एक चुनौती थी। परन्तु दुर्भाग्य से वह तेजस्वी सूर्य 27 जून, 1839 को अस्त हो गया। उसके बाद पंजाब पर जो बीती, वह

बड़ी दुःखद कहानी है। महाराजा खड़गसिंह, महाराजा नौनिहाल सिंह तथा महाराजा शेरसिंह ने बहुत थोड़े दिनों तक राज्य किया। दलीपसिंह केवल पांच वर्ष की आयु में सिंहासनारूढ़ हुए। उनके संरक्षक बनकर अंग्रेजों ने राजमाता को पुत्र से पृथक् कर पहले शेखूपुर के किले में और बाद में संयुक्त प्रान्त में चुनार के किले में बन्दी बनाया। इसके बाद 29 मार्च, 1849 को प्रातः 7 बजे स्वतंत्र पंजाब का अन्तिम राजदरबार लगा जिसमें बालक दलीपसिंह अपने पिता के राजसिंहासन पर अन्तिम बार सुशोभित हुआ। उसी दरबार में उदासी और सन्नाटे के बीच अंग्रेज अधिकारी इलियट और सर हेनरी लारेंस के पधारने पर फारसी भाषा में घोषणा की गई कि अब पंजाब अंग्रेजी राज्य में विलय किया जाता है। उस समय विरोध प्रदर्शन के मध्य उस अबोध बालक दलीपसिंह के सामने वह घोषणा–पत्र रखा गया जिस पर उस बालक महाराजा के हस्ताक्षर करा के उसे सदा के लिए पंजाब राज्य से हटा दिया गया और राज दरबार समाप्त हुआ। लाहौर के शाही किले पर फहराता हुआ स्वतंत्रता का झण्डा उतार लिया गया और उसकी जगह अंग्रेजी साम्राज्य का झण्डा यूनियन जैक फहराया गया। महाराजा रणजीत सिंह के तोशाखानें का बहुमूल्य सामान नीलाम कर दिया गया। सोना, चांदी और जवाहरात अंग्रेज सरकार ने अपने अधिकार में ले लिए। महाराजा दलीप सिंह को लार्ड डलहौजी के आदेशानुसार 21 दिसम्बर, 1849 को पंजाब से हटाकर पहले तो फतेहपुर सीकरी में रखा गया। बाद में 8 मार्च, 1853 को धर्म परिवर्तन कराके अगले साल इंग्लैंड भेज दिया गया।

उस समय पंजाब की राजनैतिक स्थिति पतन की चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। राष्ट्र में अपने पुनरूद्धार का साहस नहीं बचा था और न पर्याप्त साधन ही उपलब्ध थे। पंजाब की सामाजिक और धार्मिक दशा भी इतनी पतित थी कि सिख और हिन्दू मृतप्राय हो रहे थे। बालिकाओं का वध और विक्रय प्रचलित था। बाल–विवाह के कारण विधवाओं की संख्या उत्तरोत्तर वृद्धि पर थी। विधवा–विवाह वर्जित होने के कारण विधवाएं आजन्म दुःखद जीवन व्यतीत करने के लिए विवश थी।

इस प्रकार गुरू गोबिंद सिंह के बाद और अंग्रेज सत्ता के आने पर पंजाब में कोई धार्मिक नेता नहीं था। गुरू गोबिन्द सिंह के बाद गुरू

बालक सिंह कुछ समय तक सिखों के धार्मिक नेता रहे। परन्तु उन्होंने गुरू गोबिन्द सिंह की तरह राजनीति में भाग नहीं लिया।

अंग्रेज राज्य में पंजाब में सबसे प्रथम जो महापुरूष अवतीर्ण हुए, वह थे सद्‌गुरू राम सिंह जी महाराज। यह गुरू बालक सिंह जी के उत्तराधिकारी थे। गुरू–गद्दी पर आसीन होते ही इन्होंने नए एक पंथ का सूत्रपात किया जो नामधारी या कूका नाम से विख्यात हुआ। समय की आवश्यकता और देश की राजनैतिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, गुरू राम सिंह जी ने धर्म और राजनीति को एक साथ जोड़ दिया। इस मिश्रण से जो नया पंथ प्रचलित हुआ, उसकी भारत में अंग्रेज राज्य से सीधी टक्कर हुई। स्वधर्म और स्वराज्य के लिए ऐसा संघर्ष उस जमाने के लिए बड़ा क्रांतिकारी कदम था।

हमारे स्वंतत्रता संग्राम के इतिहास में गुरू राम सिंह और उनके द्वारा संचालित नामधारी–कूका–आन्दोलन का एक विशेष स्थान है। इस आन्दोलन के महत्व से कम लोग परिचित हैं। इसमें कोई विस्मय की बात नहीं क्योंकि विदेशी–शासन ने इस बात की पूरी कोशिश की कि लोग इन वीर क्रांतिकारियों को, जिन्होंने अपना जीवन बलिदान किया और यातनाएं सहन कर देश में नवजीवन का संचार किया, सदा के लिए भूल जाएं। यह इतिहास और समय की विडम्बना तथा देश का दुर्भाग्य है कि सद्‌गुरू राम सिंह जी जैसे महान् तपस्वी, देश भक्त और लोकनायक तथा उनके सहयोगी सूबों को, बिना कोई अपराध सिद्ध किए, बिना मुकद्दमा चलाए, आजीवन देश–निष्कासन का घोर दण्ड दिया गया। उनके निर्दोष अनुयायियों पर सन् 1872 से 1947 तक निरन्तर दमन–चक्र चलाकर अंग्रेज सरकार ने जो अत्याचार किए, उसकी कहानी तो इतनी भयानक और लम्बी है कि वह एक अलग पुस्तक का विषय बन सकती है।

इस पुस्तक में गुरू राम सिंह के जीवन की घटनाएं विश्वस्त सरकारी और गैर सरकारी पत्रों, लेखों आदि के आधार पर दी गई हैं। इसे पढ़ने पर यह तो नहीं कहा जा सकेगा कि "लोग तो भूल ही जाएंगे हम दीवानों के अफसाने को!" आज़ादी के एक दीवाने गुरू राम सिंह का ही अफसाना यहाँ प्रस्तुत है।

पंजाब और अंग्रेज

जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज अधिकारी राज्य–स्थापना की आकांक्षा से कूटनीति के आधार पर देश में अपना शासन जमाने के प्रयत्न में लगे थे, तब पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह का राज्य था। रणजीत सिंह न्याय–प्रिय, कर्त्तव्यपरायण और प्रजा–सेवी होने के साथ कुशल और दृढ़ शासक भी थे। उनका दबदबा चारों ओर था। समृद्धिशाली और सुखी प्रजा के हृदय–सम्राठ महाराजा रणजीत सिंह 27 जून, 1839 को स्वर्ग सिधारे। इससे अंग्रेजों को अपनी मनचाही करने का अवसर मिल गया। दस वर्ष में ही सारे पंजाब के मान–चित्र का रंग ही बदल गया और पंजाब भी पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ दिया गया।

अंग्रेजों के अत्याचारों के फलस्वरूप पंजाब में सद्‌गुरू राम सिंह के नेतृत्व में कूका आन्दोलन का जन्म हुआ। यह आन्दोलन जनता का था और अंग्रेजी राज्य के विरूद्ध निश्चित विद्रोह था। भारतीयों ने प्लासी में 1757 की पराजय को कभी भी स्वीकार नहीं किया। न वह कभी मौन रहे और न अंग्रेजों को चैन से रहने दिया। 1761 से 1840 तक निरन्तर अंग्रेजों की सेनाओं से युद्ध होता रहा। इन वीरों में थे बिहार के ताना भगत, संथाल, गोंड, भील, कोल, नागा, पूर्वी बंगाल के तीतू मियां के नेतृत्व में मुसलमान, भरतपुर के जाट, गूजर, रूहिल्ले, पिण्डारी, पश्चिमोत्तर भारत के पठान, सिन्धी, कांगड़ा और होशियारपुर के डोगरा राजपूत और सिक्ख। ये सब पराजित हुए और इनका निर्दयता से वध किया गया। इनके नेता या तो फाँसी पर चढ़ाए गए, देश–निष्कासित किए गए, या राज–बन्दी बनाकर किलों या जेलों में मृत्यु–पर्यन्त रखे गए।

सन् 1849 में लाहौर को अंग्रेज राज्य में मिलाकर, अल्पवयस्क महाराजा दलीप सिंह को विलायत ले जाया गया जहाँ वह 1893 में स्वर्गवास हुए। पंजाबी अंग्रेज राज से घृणा करते थे। उनका विचार था कि अंग्रेजों ने पंजाब को समरभूमि में पराजित नहीं किया, अपितु विश्वासघात, कपट, कूटनीति और पंजाबियों को पंजाबियों से लड़ाकर विजय प्राप्त

की। अंग्रेज राज के प्रारम्भिक दिनों में बहुत से लोग फिरंगी हाकिमों से हाथ मिलाने में धर्म और शरीर भ्रष्ट होगा, ऐसे समझते थे। पंजाब में अन्दर ही अन्दर विद्रोह की ज्वाला धधकने लगी और सीमान्त के निवासियों के आक्रमण होने लगे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोर्ड आफ मैनेजमेंट के प्रथम प्रधान सर हैनरी लारेन्स की नीति थी कि जनता के विभिन्न पक्षों में पारस्परिक द्वेष के बीज बोए जाएं जिससे वह मानसिक एकता, भ्रातृ–भाव और क्षेत्रीय राष्ट्रीयता टुकड़े–टुकड़े हो जाए जो पंजाबियों में महाराजा रणजीत सिंह के काल (1799–1839) में विकसित और सुदृढ़ हुई थी।

पंजाब में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का निर्दयता से दमन किया गया। विद्रोहियों को दण्ड देने के लिए एक अंग्रेज सेना कर्नल नेविसन के नेतृत्व में भेजी गई। यह घटना मेरठ में सैनिक विद्रोह से कुछ मास पूर्व हुई थी। मेरठ के सैनिकों ने विद्रोह का शंखनाद किया और प्रथम स्वतंत्रता संग्राम प्रारम्भ हुआ। गुरू राम सिंह जी गंगा के मैदान की घटनाओं के प्रति सतर्क रहे।

मुगल सिक्खों से घृणा करते थे। औरंगजेब ने जिस प्रकार विश्वासघात और अत्याचार से पंजाब को अपने राज्य में मिलाया था और गुरू तेगबहादुर की हत्या की थी, उसे सिक्ख भूले नहीं थे। इस कारण उन्होंने दोनों प्रतिद्वंदियों को परस्पर अन्त तक लड़ने को छोड़ दिया था। जब दिल्ली की स्थिति बहुत बिगड़ चुकी तो बूढ़े बादशाह बहादुरशाह ने सिक्खों से धर्म–युद्ध में शीघ्रता से भाग लेने की प्रार्थना की और साथ ही अपने पद–त्याग का भी वचन दिया। परन्तु तब समय निकल चुका था।

जब पंजाब की यह स्थिति थी तो अंग्रेज पंजाब के सिक्खों की राज–भक्ति के गीत गाकर उन सिक्ख सैनिकों पर मिथ्या प्रभाव डालने में व्यस्त थे जो कम्पनी की सेवा में इलाहाबाद, पटना और बंगाल में रहते थे ताकि वे राजभक्त बने रहें। पंजाब का धनी वर्ग, पूंजीपति, सेठ–शाहूकार, राजा–महाराजा, अंग्रेजों के साथ हो गए थे। सारे सामाजिक और धार्मिक संगठन प्रायः टूट चुके थे। उस समय पंजाब की यह स्थिति हो गई थी

कि राजनैतिक रूप से केवल सिक्खों में ही नहीं अपितु सारे पंजाब में जीवन–स्फूर्ति प्रायः समाप्त हो चुकी थी। सिक्ख सरदारों और जागीरदारों में स्वाभिमान नहीं रह गया था। देशहित की भावना नष्टप्राय हो चुकी थी। राजनैतिक दुर्दशा के साथ ही सामाजिक और धार्मिक पतन भी चरम सीमा पर था।

सिख सेनाएं तोड़ी जा चुकी थीं। पाश्चात्य सभ्यता और विलासिता का बोलबाला था। धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के कारण हिन्दू–सिक्ख समाज की दशा दयनीय थी। साहस और शक्ति का पूर्णतः ह्रास हो चुका था। वास्तव में देश और जाति की दुर्दशा इस अवस्था को पहुँच चुकी थी, कि जन–मानस पथ प्रदर्शन और सशक्त नेतृत्व की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था।

स्वतंत्रता संग्राम तथा पंजाब

1849 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने महाराजा दलीप सिंह की छोटी उम्र में जिस प्रकार पंजाब को अपने राज्य में मिलाया वह पंजाब के लोगों, और विशेषतः सिक्खों के लिए अविस्मरणीय दुर्घटना थी। इसके बाद 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम हुआ। पंजाब के लोगों के दिलों में अंग्रेजों के अत्याचारों के घाव अभी ताजे ही थे। फिर भी पंजाब के सिक्खों को अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति और देशद्रोह के घोर पाप से कलंकित किया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की देशी सेनाओं में मुट्ठी भर सिक्ख सैनिक थे। पटियाला तथा जींद के राजाओं का सहयोग कम्पनी को प्राप्त होने के कारण बहुत से विदेशी और भारतीय इतिहासकारों ने सारे सिक्ख समुदाय को राजभक्त मान कर कलंकित किया है, जो गलत है, नामधारी सिक्ख ऐसे नहीं थे। स्मिथ, फारेस्टर, मालेसन जैसे विदेशी इतिहासकारों ने जानबूझकर 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के समय सिक्ख–राजभक्ति की दिल खोलकर प्रशंसा की ताकि सिक्ख और हिन्दुओं में, जिन्होंने एक साथ मिलकर मुगल शासकों से लोहा लिया था, विरोध उत्पन्न हो जाए। हिन्दू और सिक्ख दोनों ही अंग्रेज साम्राज्यवादियों की इस चाल और कुचक्र के शिकार बने।

भारतीय इतिहासकार, जिन्होंने शुरू में स्वतन्त्रता संग्राम पर ग्रन्थ लिखे, अंग्रेज लेखकों के कथनों और तथ्यों पर निर्भर रहे। इसी कारण उन्होंने भी सिक्खों पर राजभक्ति के आरोप लगाए और इलाहाबाद, पटना, लखनऊ, कानपुर तथा मेरठ में विद्रोहियों के परास्त होने का कलंक भी सिक्खों पर ही मढ़ा है। वास्तव में यह न उचित है और न सत्य ही। जब विप्लवियों ने बहादुरशाह को हिन्दुस्तान का सम्राट घोषित किया तो साधारणतः सिखों के हृदयों में भय और शंका उत्पन्न हुई और विशेषकर उनके जो कि ईस्ट इंडिया कम्पनी की नौकरी में थे। वही मुगल साम्राज्य पुनः स्थापित किया जा रहा था जिससे सिक्खों को घृणा थी। वे बड़ी दुविधा में पड़ गए। अतः कुछ ने यह निर्णय किया कि जो हमारी बात मानेगा उसका हम साथ देंगे। परन्तु सारे समुदाय को केवल कुछ लोगों के कृत्यों के कारण कलंकित करना न्यायोचित नहीं। हिन्दू और

मुसलमानों में भी देशद्रोही थे जिनके कृत्यों की चर्चा इतिहासकारों ने केवल कुछ शब्दों में की है। यदि एक ब्राह्मण भेदिये ने विप्लवियों का भेद, सर जान लारेन्स को न दिया होता तो मेरठ के सिपाही निर्धारित तारीख से पहले विप्लव प्रारम्भ न करते और सम्भवतः विप्लव का स्वरूप भिन्न होता। परन्तु हमारे इतिहासकारों ने इसे कुछ भी महत्व नहीं दिया और न ही सालारजंग की निन्दा की जिसने हैदराबाद में विप्लव का दमन किया। विभिन्न जातियों के असंख्य लोगों ने ईस्ट–इण्डिया कम्पनी की सहायता की। परन्तु हमारे इतिहासकारों ने केवल सिखों को ही चुनकर कलंकित किया।

हमें देखना चाहिए कि जिन सिक्खों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी का साथ दिया उनके अतिरिक्त दूसरे सिक्खों ने उन दिनों पंजाब में क्या किया? जिन्होंने मुगलों का विरोध किया था और अंग्रेजों से घृणा करते थे वे स्वयं को सशस्त्र बनाने में व्यस्त थे। लाखों सिक्ख गुरू राम सिंह जी के साथ शपथ ले चुके थे कि वह अंग्रेजों को भारत से निकाले बिना चैन नहीं लेंगे। गुरू राम सिंह जी ने नामधारी पंथ चला कर कूका–आन्दोलन को जन्म दिया। पहले गुरू राम सिंह जी ने सिखों को अंग्रजों से असहयोग और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आदेश दिया, बाद में अपनी सेनाओं को गुरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण दिया।

कर्नल नेविसन ने 'कूका आन्दोलन' पर लिखा है कि ''राम सिंह नाम का एक लम्बा और शक्तिशाली व्यक्ति है, जो स्वयं को पंजाब का शासक घोषित करता है। उसके लगभग तीस हजार सशस्त्र अनुयायी है। ये वास्तव में उत्तरी पंजाब के आधे भाग पर अधिकार जमाए हैं। यदि इनको अपनी मर्जी करने दी गई तो ये बहुत थोड़े समय में ही पूरे पंजाब को हड़प जाएंगे। कुछ कूके भेदिये मेरे कैम्प के निकट घूमते हुए पकड़े गए। उनको मृत्यु के घाट उतार दिया गया। परन्तु उनको अन्य सिक्ख सिपाहियों के सामने मारना भयंकर (खतरनाक) है क्योंकि वे हमारे खिलाफ विद्रोह कर बैठेगें। कुछ सिपाहियों ने हमारा साथ छोड़ दिया है। अतः शेष को मेरठ वापिस भेज दिया गया। गुरु राम सिंह जी ने जाति भेद मिटा दिया है। विधवा–विवाह की अनुमति दे दी है। इस कारण एक

जाति के दूसरे को विरूद्ध लड़ाना सम्भव नहीं रहा। वे सब एक साथ मिलकर लड़ते हैं। आर्थिक रूप से भी आन्दोलन सुदृढ़ है, क्योंकि गुरु राम सिंह गुरु गोविन्द सिंह के नाम पर कर वसूल करता है। वह मेरी सेना का सामने से डटकर विरोध नहीं करता। वह पीछे से आक्रमण कर परेशान करता है।''

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के समय कर्नल नेविसन पटियाला और जींद रियासत में ही रहे। गुरु राम सिंह जी परिस्थिति का अध्ययन करते रहे।

सद्गुरू राम सिंह जी का प्रारम्भिक जीवन

श्री सद्गुरू राम सिंह जी का जन्म 1816 की बसन्त पंचमी को लुधियाना जिले के भैणी गांव में हुआ था। इनके पिता बाबा जस्सा सिंह एक गरीब किसान रामगढ़िया परिवार से थे। इनकी शिक्षा–दीक्षा इनकी माता सदाकौर द्वारा घर में ही हुई थी। इनकी माँ इन्हें प्रतिदिन महाभारत, भागवत, रामायण और सिख गुरुओं की जीवन–कथाएं सुनातीं। राम सिंह जी की बचपन से ही भक्ति मार्ग की ओर प्रवृति थी। रोज धर्मशाला (गुरुद्वारा) जाने की परिपाटी के कारण उनको संत–वाणी कंठस्थ थी। वे उसे अपने बाल–साथियों में बड़े प्रेम से गाया करते थे। राम सिंह जी के शब्द–कीर्तन से वे मुग्ध हो जाते थे। कभी–कभी जनता के आग्रह पर वह सभा में भी शब्द कीर्तन करते थे। बचपन में प्राप्त शिक्षा के फलस्वरूप भक्ति और निर्भीकता के गुणों का उनमें भरपूर विकास हुआ।

1836 में बीस वर्ष की आयु में वह महाराजा रणजीत सिंह की सेना में नौनिहाल रेजिमेंट में भर्ती हो गए। परन्तु वह अधिकतर ईश्वरोपासना में संलग्न रहते थे। अपनी नौकरी के काम से अवकाश पाते ही वह गुरुद्वारे जाकर गुरुवाणी का पाठ करते और जनता को सन्त–वाणी सुनाते। सैनिक तथा सांसारिक कार्यों में उनका मन नहीं लगता था। इसी अवधि में सामाजिक स्थिति का निकट से अध्ययन करके वह विहवल हो उठे। मन में वैराग्य की भावना प्रदीप्त हो उठी। 1845 में सिक्ख सरदारों का चरित्र–पतन देखकर वह अपने गांव भैणी चले गए। गुरू राम सिंह का विवाह बीबी जस्सा जी से हुआ जिनसे दो कन्याओं का जन्म हुआ।

1841 में जब गुरू राम सिंह जी एक बार अपनी पलटन के साथ पेशावर जा रहे थे तो मार्ग में हज़रों नगर में श्री गुरु बालक सिंह जी से नाम–दीक्षा प्राप्त की थी। उसके बाद भी उनके दर्शनों को एक बार और गए थे। अवकाश ग्रहण करने पर गुरु राम सिंह जी तीसरी बार श्री गुरू बालक सिंह जी के दर्शनार्थ हज़रो गए। गुरु जी का राम सिंह जी पर बड़ा प्रभाव था। गुरु बालक सिंह जी को भी राम सिंह में सर्वगुण सम्पन्न उत्तराधिकारी मिल गया।

बाबा गुरु बालक सिंह ने गुरु राम सिंह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करते समय कहा थाः

''देश और जाति की बिगड़ी हुई दशा सुधारने के लिए कमर कस लो। जब तक कोई देश, विदेशियों के कब्जे में रहे तब तक वह आत्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए अब देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने की परम् आवश्यकता है।''

गुरु राम सिंह बाबा बालक सिंह की मृत्यु के बाद भैणी गाँव में ही गुरु–गद्दी पर आसीन हो, रहने लगे। शान्तिपूर्वक भगवद् भजन में लगे रहने के कारण गुरु राम सिंह बहुत प्रसिद्ध हो गए। दूर–दूर से लोग उनके दर्शनों को आने लगे। उन्होंने अपने समाज की बुराइयों के विरूद्ध संघर्ष प्रारम्भ किया। इसी के बाद गुरु रामसिंह जी कटिबद्ध हो राजनैतिक क्षेत्र में उतर आए जिस धार्मिक पंथ के वह गुरु थे वह नामधारी नाम से विख्यात हुआ। इसके बाद गुरु राम सिंह जी ने यही ललकार या कूक दी जिससे वह कूका कहलाएः–

आ गया है कर्मयुग कुछ कर्म करना सीख लो।
देश, धर्म और जाति हित हँस–हँस कर मरना सीख लो।
मारने का नाम मत लो, पहले मरना सीख लो।
देश को स्वतंत्र करना है तो दब–दब कर उभरना सीख लो।

धर्माधारित राजनीति और नामधारी पंथ

गुरु बालक सिंह जी की गद्दी पर आसीन होते ही परम्परागत धार्मिक भावनाओं के साथ–साथ सद्‌गुरू राम सिंह जी के हृदय में देश की दशा सुधारने का विचार बड़े वेग से हिलोरें मारने लगा। समाज में फैली अनेकों बुराइयों को दूर करने और धर्म को आधार बनाकर राजनैतिक कार्य करने की भावना को उन्होंने महत्व दिया। इन्हीं आदर्शों से प्रेरित होकर 12 अप्रैल, 1857 (बैसाखी दिवस) को सद्‌गुरु राम सिंह जी ने उस नए संगठन की नींव रखी जिसे 'नामधारी पंथ' के नाम से ख्याति प्राप्त हुई। उसी दिन उन्होंने अपना सफेद तिकोना झण्डा फहराया था और अपने अनुयायियों को मूल सिद्धान्त समझाए थे।

गुरु राम सिंह जी ने अपने अनुयायियों को सदाचारी बनाने के उद्देश्य से मदिरा पान, मांसाहार, झूठ, चोरी, व्यभिचार तथा सूदखोरी को सर्वथा निषिद्ध घोषित किया। उन्होंने पंजाब में कन्या–वध की प्रचलित कुप्रथा को भी समाप्त किया। स्त्रियों का क्रय–विक्रय तथा विवाह में दहेज प्रथा और व्यर्थ की खर्चीली रस्मों का अन्त किया। विधवा–विवाह की प्रथा चलाई। उन्होंने गो वध तथा पाश्चात्य सभ्यता के अनुसरण का विरोध किया।

नामधारी पंथ की स्थापना के समय गुरु राम सिंह जी ने खण्डे का अमृत तैयार किया। यह अमृतपान स्त्री–पुरुष सभी को करा के गुरु जी ने एक नयी क्रान्तिकारी परिपाटी को जन्म दिया। इससे पूर्व महिलाओं को अमृतपान कराने की प्रथा नहीं थी। यह प्रथा 1 जून 1863 से शुरू की। इस पंथ में कुछ और नई बातों का समावेश किया गया। सादे रहन–सहन पर जोर दिया गया।

नामधारियों की वर्दी निश्चित की गई–शीश पर एक विशेष प्रकार की सफेद (गोल) खादी की पगड़ी, सफेद खादी का कुर्ता और सफेद खादी का पायजामा तथा गले में सफेद ऊन की माला और मुख में 'वाहेगुरु का नाम'। यह लोग नल का पानी तक नहीं पीते थे। नदी या

कूप के जल का उपयोग करते थे। यह हवन–यज्ञ आदि भी करते। गो–सेवा इस पंथ का एक प्रमुख कर्त्तव्य है।

सबसे पहले गुरू राम सिंह जी ने विवाह पद्धति को भी इतना सरल कर दिया कि उनके नेतृत्व में एक ही समय और स्थान पर बहुत से विवाह एक साथ (सामूहिक) ही सम्पन्न हुए। एक विवाह पर केवल सवा रूपया मात्र व्यय होता था। इस शुभ विवाह पद्धति का नाम 'आनन्द कारज' रखा गया। यह आज भी सिक्ख समाज में प्रचलित है।

इन सभी बातों का नामधारी सिख पालन करते थे। दिनों–दिन यह आचरण परम्परा और परिपाटी का रूप धारण करता गया। गुरु राम सिंह जी के इन पवित्र और समाज सुधार के कार्यों की चर्चा सर्वत्र बड़े वेग से फैल रही थी। लोग उनके दर्शन तथा उपदेश सुनने आते और नामधारी पंथ में सम्मिलित हो जाते। गुरु राम सिंह जी ने श्री आदि ग्रंथ, श्री दशम ग्रन्थ, तथा श्री गुरू गोविन्द सिंह जी के सन्देश का प्रचार बड़े साहस और निर्भीकता से किया। उनका प्रचार–कार्य धार्मिकता और साथ ही देश की स्वाधीनता प्राप्ति की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था। गुरु राम सिंह जी ने स्वधर्म और स्वराज्य के महान् संघर्ष के लिए पंजाब में इस संगठन को विस्तृत, दृढ़ और इतना सबल बना कि यह एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन बन गया।

गुरु राम सिंह जी ने देखा कि पंजाब का अपनी स्वतन्त्रता खोने का एक कारण यह भी था कि लोग धर्म विमुख हो गए थे। वह इस निश्चय पर पहुंचे कि आज़ादी हासिल करने के लिए हिन्दू और सिक्ख समाज की बुराइयों को दूर कर लोगों को चरित्रवान और दृढ़–संकल्प बनाना जरूरी है।

नामधारी सिक्खों ने सद्गुरु राम सिंह जी की आज्ञाओं का पूरी सावधानी से पालन किया। 'नाम' और 'गुरुवाणी' के अभ्यास से उनमें एक प्रकार की ज्योति जागृत हुई। वे जहाँ भी गए नाम की सुगन्धि फैल गई। जो लोग उनके सम्पर्क में आते वे भैणी गाँव में जाकर सद्गुरू जी के दर्शन करते। श्री गुरु जी ने पूरे पंजाब में दौरा किया और सैंकड़ों नर–नारियों को नाम देकर ईश्वर भक्ति में दृढ़ किया। सद्गुरु जी के

प्रचार का ऐसा प्रभाव हुआ कि गाँव–गाँव व घर–घर में उनके आन्दोलन की चर्चा थी। सुधार का कार्यक्रम बड़ी सफलता से चल निकला। लोगों ने प्रचलित कुरीतियों का त्याग किया। गाँव–गाँव में दीवान, सत्संग और कीर्तन होते। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि निर्जीव सिक्खों में नवजीवन का संचार हो गया है।

सद्गुरु राम सिंह जी के प्रेम मय सदुपदेश और तेजस्वी व्यक्तित्व से हिन्दू ही नहीं बल्कि मुसलमान भी आकर्षित और प्रभावित हुए। उनके धार्मिक और सामाजिक सुधारों से हिन्दू और सिखों को समान रूप से लाभ पहुंच रहा था। उनके रहन–सहन और प्रचार से पश्चिमी सभ्यता की प्रगति में बड़ी भारी बाधा उत्पन्न हो गई। अंग्रेजों ने इस बात को समझा। परन्तु आन्दोलन के धार्मिक और सामाजिक होने के कारण उन्होंने इसे रोकने की विशेष आवश्यकता नहीं समझी।

कूका असहयोग आंदोलन

सद्गुरू राम सिंह जी ने भारत माता की दासता की बेड़ियां तोड़ फेंकने के अभिप्राय से अपने अनुयायियों तथा जनसाधारण को उच्च स्वर से सर्वस्व बलिदान करने की प्रथम ललकार या कूक दी। इस कूक देने के कारण ही इनका आंदोलन और उसमें सक्रिय भाग लेने वाले 'कूका' कहलाए। गुरु जी ने देश को स्वतंत्र कराने और राजनैतिक उत्थान के हेतु देशभक्ति, गोभक्ति तथा विश्वबंधुत्व की महान् भावनाओं का प्रचार किया।

सद्गुरू राम सिंह जी वास्तव में महात्मा गांधी के स्वदेशी, बहिष्कार और असहयोग आंदोलन के अग्रदूत थे। 1935 में डा. राजेन्द्र प्रसाद का कूका आंदोलन पर एक लेख पंजाब के 'सतयुग' (साप्ताहिक) में प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होने दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित किया था कि गुरू राम सिंह राजनैतिक स्वतंत्रता को धर्म का अंग मानते थे।

नामधारियों का संगठन बड़ा सुदृढ़ था। बहिष्कार और असहयोग आन्दोलन का, जिसे महात्मा गांधी ने जोरों से चलाया, गुरु राम सिंह ने पचास वर्ष पूर्व प्रचार किया था। उन्होंने सामाजिक तथा धार्मिक कार्यक्रम के अतिरिक्त, राजनैतिक कूका आंदोलन में भाग लेने वालों को निम्नलिखित कार्यक्रम पूरा करने का आदेश दियाः

1. कूका ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरियां स्वीकार न करें।
2. अंग्रेजों की चलाई शिक्षा–संस्थाओं में न पढ़ें।
3. गवर्नर–जनरल और अधीन अधिकारियों द्वारा जारी किए गए आदेशों का पालन न करें।
4. विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करें।
5. सरकारी अदालतों, रेलों और डाकतार व्यवस्था का बहिष्कार करें।

नामधारी विद्रोह उस आंदोलन का ही भाग था जो सिक्खों के पुनरूत्थान के लिए गुरु गोविंद सिंह ने 17वीं शताब्दी में चलाया था। महाराजा रणजीत सिंह के समय में सिक्खों की जो शक्ति थी, उसे एक

बार फिर प्राप्त करने की इच्छा ने नामधारी आंदोलन का रूप लिया। धर्म के आधार पर गुरु गोविंद सिंह औरंगजेब से लड़े थे। गुरु राम सिंह ने भी आजादी को धर्म के अंग के रूप में स्वीकार किया। कूका आंदोलन में सामाजिक सुधार, धार्मिक पुनरूत्थान और राजनैतिक स्वतंत्रता सभी एक में सम्बद्ध थे। महाराजा रणजीत सिंह के समय के राजनैतिक गौरव को प्राप्त करना उनके धर्म का अंग था।

कुछ लोगों का मत है कि गुरू राम सिंह जी के आंदोलन का उद्देश्य शुरू में केवल धार्मिक और सामाजिक था पर गो हत्या के प्रश्न को लेकर उसने राजनीतिक रूप धारण किया। पर यह सही नहीं लगता क्योंकि कूका धर्म के सिद्धातों का राजनैतिक स्वरूप शुरू से ही स्पष्ट था। अलग से अपनी डाक–व्यवस्था से समानान्तर सरकार के स्थापन की ध्वनि उठती है। किसी धार्मिक आंदोलन को ऐसी व्यवस्था की क्या जरूरत हो सकती थी?

गुरु गोबिन्द सिंह की तरह गुरु राम सिंह भी उसी को 'नाम' देते थे जो उनके लिए जीवन बलिदान करने का वचन देता। इससे भी कूका–आंदोलन का राजनैतिक रूप स्पष्ट हो जाता है। सरकार से असहयोग और स्वदेशी के प्रचार के धार्मिक कारण क्या हो सकते थे?

सन् 1872 और 1881 के बीच सरकार ने बर्मा में निर्वासित गुरु जी द्वारा लिखे बहुत से पत्र पकड़े। इन पत्रों से उनके राजनैतिक उद्देश्य साफ प्रकट होते हैं। उन्होंने अंग्रेज–राज्य के खत्म होने और खालसा के उदय का जिक्र किया है। उन्होंने अंग्रेज–अफगानिस्तान युद्ध, रूसियों का काबुल की ओर बढ़ना और दूसरे राजनैतिक सवाल पूछे हैं और अपने स्वदेश लौटने की भविष्यवाणी भी की। गुरु जी पर कड़े से कड़े प्रतिबंध लगाए गए। फिर भी उनके शिष्य उनसे मिलने पहुंच जाते थे। गुरु अपने अनुयायियों को सरकार से असहयोग करने की शिक्षा देते रहे।

जवाहरलाल नेहरू ने अपने एक संदेश में कहा था, "श्री सद्गुरु राम सिंह जी ने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए आज से 75 वर्ष पूर्व जो महान् गौरवशाली परिश्रम किया था उसकी महानता से कोई भी

हिन्दुस्तानी इंकार नहीं कर सकता। कांग्रेस ने आपके दिखाए हुए मार्ग पर चल कर सफलताएं प्राप्त की है।"

जब श्री सुभाषचन्द्र बोस 1939 में कांग्रेस अध्यक्ष हुए तो उन्होंने भी अपने एक संदेश में कहा था कि गुरु राम सिंह जी के फहराए हुए आज़ादी के झंडे के नीचे नामधारियों ने जो त्याग और बलिदान किया है उस पर देश को सदा गर्व रहेगा। वास्तव में गुरु राम सिंह जी भारत में असहयोग के सर्वप्रथम नेता थे।

गुरु राम सिंह जी के जीवन में वह धार्मिक, नैतिक और सामाजिक प्रेरणा के उत्साहप्रद स्त्रोत थे जिनसे महात्मा गांधी के जीवन और कार्यक्रम को, जाने अथवा अनजाने, बल और वरदान प्राप्त हुआ। उनसे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को पथ–प्रदर्शन मिला। गुरु राम सिंह जी ने जनता के नैतिक उत्थान और उसमें आत्म–विश्वास और आत्म–बलिदान की भावना जगाने का महान प्रयास किया। उनके कार्यक्रम में विदेशी शासन को समाप्त करने के लिए समानान्तर सरकार बनाने की और आर्थिक दासता से मुक्ति पाने की योजना थी। इन सब बातों से बौखला कर पंजाब की अंग्रेज सरकार ने गुरु राम सिंह के अनुयायियों पर जो अत्याचार किए उनकी लोमहर्षक कहानी इस पुस्तक का प्रमुख विषय है। अंग्रेज राज प्रारम्भ से ही अन्याय और अत्याचार की भित्ति पर खड़ा था। उसे उखाड़ फेंकने के लिए निहत्थे और असहाय भारतीयों ने जो शांतिमय तथा सशस्त्र संघर्ष किया उसकी श्रृंखला में सद्‌गुरु राम सिंह का आंदोलन एक शानदार कड़ी है।

गुरु राम सिंह जी ने अपने अनुयायियों तथा साधारण जनता में भी सर्वप्रथम विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा स्वदेशी का प्रचार आरम्भ किया, अंग्रेजों के न्यायालयों का सर्वथा बहिष्कार कराया। पारस्परिक विवादों को निपटाने के लिए पंच–मंडली का उपयोग किया। अंग्रेजों के स्कूल–कालेज आदि शिक्षा संस्थाओं का, साथ ही रेल, तार, डाक तथा सरकारी नौकरी के पूर्ण वहिष्कार की प्रेरणा दी। घर–घर में लोग चर्खे चला कर हाथ से कते सूत का कपड़ा बना कर पहनने लगे। नामधारी

कूके मोटर और रेलें छोड़ कर पैदल अथवा बैलगाड़ी या घोड़ों पर ही चलते थे। कूकों ने अपनी स्वतंत्र डाक–व्यवस्था चलाई। पूरे पंजाब में बिना मूल्य डाल ले जाने और बाँटने की व्यवस्था की गई। डाक सेवा का यह कार्य पंजाब में नामधारी–कूकों में स्वतंत्रता–प्राप्ति तक निरन्तर चलता रहा। पंजाब के दूर–दूर के भागों में कूकों की सन्देश भेजने की निश्चित व्यवस्था थी। चार कूके तेजी से पास के गाँवों में जाते और विश्वस्त कूकों को जबानी सन्देश सुनाते व लिखित संदेश देते। वे कूके तुरन्त रवाना हो जाते और यह क्रम चलता रहता।

सद्‌गुरु राम सिंह जी ने बाद में अपना कार्यक्षेत्र और विस्तृत किया। सरकार ने बौखला कर कुछ समय के लिए कुछ प्रतिबंध लगा दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि गुरु राम सिंह जी का अधिकतर कार्य गुप्त रूप से होने लगा। पंजाब को 22 सूबों में बांट दिया गया। हर सूबा प्रायः एक जिले के बराबर था। हर भाग का एक शासक नियुक्त किया गया जिसे सूबा कहते थे। यह सूबे न्याय का काम भी करते थे क्योंकि नामधारियों ने अंग्रेजों की अदालतों का बहिष्कार कर रखा था। प्रत्येक तहसील और गांव में भी अधिकारी नियुक्त किए गए। गुरुद्वारों में एक ग्रंथी को शिक्षा का काम सौंपा गया। इन सूबों की नियुक्ति से इस बात का संकेत मिलता है कि गुरु जी अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए स्थाई व्यवस्था कर रहे थे और उनके राजनीतिक उद्देश्य भी थे। उस समय की परिस्थिति के अनुसार यह व्यवस्था जन–जागृति की दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली थी। सूबों ने नामधारी संगठन को दृढ़ बनाया।

इस प्रकार 1863 तक असहयोग कार्यक्रम ने एक महान् आंदोलन का रूप धारण कर लिया। अफसरों ने इस आंदोलन के संबंध में सरकार को ऐसी सूचनाएं दी; जिनके द्वारा इसके नेता को धार्मिक और सामाजिक बताते हुए भी यह कहा गया कि आंदोलन से जनता में असंतोष और अशांति की वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त यह भी आशंका प्रकट की गई कि यह राजनैतिक रूप धारण कर सकता है।

सियालकोट के डिप्टी कमिश्नर मैकनब ने सब से पहले इस सम्बन्ध में यह सूचना दी कि "राम सिंह नामक वृद्ध अपने 200 सेवकों के साथ जिला सियालकोट का भ्रमण कर रहा है। वह अपने अनुयायियों को बन्दूकों के स्थान पर लाठियों से कवायद कराता है। वह किसी अधिकारी का आदेश नहीं मानता। वह वैशाखी का मेला देखने के लिए अमृतसर जा रहा है।"

गुरू राम सिंह जब अपने सेवकों सहित 11 अप्रैल, 1863 को अमृतसर पहुंचे तो पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर के आदेशानुसार लाहौर के डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस, मेजर मेक, अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर, मेजर मरे और जिला सुपरिंटेण्डेण्ट सद्‌गुरू जी के पास पहुंचे। उन्हें गुरू जी के आंदोलन का उद्देश्य जानने का विशेष आदेश था। मरे ने उनसे वार्तालाप करने के बाद सूचना भेजी कि "उनके सेवक हृष्ट–पुष्ट और जवान हैं। उनकी बातचीत का ढंग विद्रोहात्मक नहीं है। वह शांतिमय और गम्भीर प्रकृति के प्रतीत होते हैं। अतएव भरे मेले में उनके कार्यक्रम में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा गया।"

इसके बाद 4 जून, 1863 को खोटा ग्राम के चौकीदार ने सूचना दी कि राम सिंह जी और उनके शिष्य सरकार के विरूद्ध विद्रोहपूर्ण भाषण देते हैं। वे कहते हैं कि "देश पर शीघ्र ही हमारा आधिपत्य हो जाएगा। सवा लाख सशस्त्र सिख हमारे साथ होंगे। हम किसानों से उनकी फसल का पांचवाँ भाग कर के रूप में लेंगे।" गुरु जी द्वारा सरल विवाह–पद्धति के प्रचार से रूढ़िगत विवाह कराने वाले पंडित भी क्रुद्ध हो गए थे।

चौकीदार की सूचना पर एक सार्जेण्ट और पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट खोटा भेजे गए। उन्होंने चौकीदार की सूचना सही मान कर उसका समर्थन किया। फलस्वरूप फिरोजपुर के डिप्टी कमिश्नर ने पंजाब सरकार की आज्ञानुसार कूका दीवान पर प्रतिबंध लगा दिए। सद्‌गुरू राम सिंह जी को सेवकों सहित उनके गांव पहुंचा देने का आदेश दिया गया। सरकारी आदेशानुसार फीरोज़पुर के डिप्टी कमिश्नर ने गुरु राम सिंह जी को बाधा पराणां थाने में बुला कर पूछा कि "आपके विरुद्ध विद्रोहात्मक

भाषणों का आरोप है। आप इस सम्बन्ध में क्या कहना चाहते हैं?''
सद्गुरु जी ने बड़ी शांत मुद्रा में उत्तर दियाः

''मैं सत्य धर्म का प्रचार करता हूँ। व्यर्थ और खर्चीली रीति–रस्मों के भार से जनता को मुक्त कराना चाहता हूँ। सामाजिक और धार्मिक अवनति के कारण लोगों को जो दुःख हो रहे हैं, मैं उन्हें दूर करने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरा किसी से विरोध या द्वेष नहीं हैं। मैं देश और जाति का हितैषी हूँ। यदि ऐसा करने का नाम विद्रोह है तो मैं इसके लिए हर प्रकार का कष्ट सहन करने को सदा तत्पर हूँ।''

इस निर्भीक उत्तर को सुन कर डिप्टी कमिश्नर कुछ देर शांत रहने के बाद बोला, ''अब आपको इस जिले में दीवान करने की अनुमति प्राप्त नहीं होगी।'' यह आदेश सुनाने के बाद सद्गुरु जी को हिरासत में ले कर पुलिस के संरक्षण में भैणी भेजा गया और वहाँ से 28 दिनों तक नित्य लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर के सामने उपस्थित किया जाता रहा।

अप्रैल, मई व जून 1863 में पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर के आदेशानुसार सरकारी कर्मचारी कूका–आंदोलन के सम्बन्ध में सूचनाएं भेजते रहे जो अधिकांश कल्पित और अतिश्योक्तिपूर्ण होने के साथ अक्सर निर्मूल भी होती थीं। कप्तान मिलन ने 11 जून को जो सूचना भेजी उसका सारांश था, ''सद्गुरू राम सिंह जी का भेद लेने को गेंदा सिंह को भैणी भेजा गया। वह वहाँ उस समय पहुंचा जब गुरु जी डेरे से कहीं बाहर गए हुए थे। गेंदा सिंह बाबा साहिब सिंह के पास गया और दीक्षा प्राप्त कर के कूका बनने की प्रार्थना की। बाबाजी ने उसे नाम दिया और वह कूकों में प्रविष्ट हो गया। गेंदा सिंह ने देखा कि रात को ढोल बजने के बाद पचास कूके बाबा साहिब सिंह से लाठियाँ ले कर दो घंटे तक कवायद करते हैं। इसके बाद उसने सद्गुरु जी के दर्शनों की इच्छा प्रकट की। बाबा साहिब सिंह जी ने उसे अपने दो पत्र दे कर कहा कि सद्गुरू जी को इन्हें दे देना। गेंदा सिंह पत्र लेकर जालंधर छावनी पहुँचा और वहां कप्तान मिलर को वे पत्र दे दिए।'' उन दो पत्रों में एक पत्र ही मुख्य है जो कल्पित जान पड़ता है। पत्र में लिखा हैः–

"फतेह। गुरु गोविदसिंह जी सहाय। मैं एक बढ़ई के घर जन्म लूंगा और राम सिंह नाम से विख्यात होऊंगा। मेरा घर यमुना और सतलुज के मध्य होगा। मैं अपना पंथ प्रगट करूंगा। मैं फिरंगी को पराजित कर अपने शीश पर राज्य–मुकुट धारण कर के शंख ध्वनि करूंगा। गायक मेरे गीत गाएंगे। सन 1864 में सिंहासन पर बैठूंगा। जब मेरे सवा लाख सिंह होंगे तो मैं फिरंगियों के सिर काटूंगा। सवा लाख खालसों की जयकार सुन कर ईसाई देश से भाग जाएंगे। यमुना तट पर भारी संग्राम होगा। लहू रावी के जल के समान वेग से बहेगा। किसी फिरंगी को जीवित न छोड़ा जाएगा। सन 1865 में देश भर में उपद्रव होंगे। खालसा का शासन होगा। राजा और प्रजा सुख और शांति से रहेंगे। दिन–प्रति–दिन, राम सिंह का राज्य बढ़ता जाएगा। यह अकाल पुरूष ने लिखा है। सन 1865 में समस्त देश भर पर राम सिंह का राज्य होगा। मेरे सिक्ख अकाल पुरुष की पूजा करेंगे। अकाल पुरुष जी का वाक्य है कि यह सब कुछ हो कर रहेगा।"

पंजाब के सरकारी कर्मचारियों ने इसी प्रकार की झूठी और काल्पनिक सूचनाएं भेजीं। अमृतसर के कमिश्नर मेजर फेरिंगटन, डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेण्डेंट पुलिस कैप्टेन मेन्जीज ने इस आशय की सूचना भेजी कि 1863 को दीवाली को राम सिंह जी और उनके कूके अमृतसर में विद्रोह करेंगे। ऐसी सभी सूचनाएं एकत्र कर पंजाब के इंस्पेक्टर जनरल मेजर यंग हज़बेंड ने एक स्मृतिपत्र पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर को दिया। इन सूचनाओं और स्मृतिपत्र के आधार पर सद्गुरु जी को भैणी गांव में नजरबंद कर दिया गया। 30 जून 1863 को निकाले गए एक आदेश में कहा गया था कि राम सिंह अमृतसर में कोई सम्मेलन (दीवान) न करें और यदि इस चेतावनी के पश्चात् भी सम्मेलन किया गया और कोई झगड़ा हुआ तो शांति–भंग के अपराध में उन पर मुकदमा चलाया जाएगा। अंत में लिखा गया था कि राम सिंह को हिदायत दी जाती है वह अपने गांव में ही रहें। पुलिस उन पर निगरानी रखेगी और उनकी सरगर्मियों की सूचना देगी।

6 जुलाई, 1863 को सद्गुरू राम सिंह को लुधियाना बुला कर यह आदेश सुनाया गया। उसी दिन से उनकी निगरानी के लिए पुलिस तथा गुप्तचर नियुक्त किए गए। सद्गुरु जी पर यह प्रतिबंध था कि वह बड़े सम्मेलनों, मेलों और दीवानों में बिना सरकारी अनुमति के नहीं जा सकते थे। परन्तु वह 1866 में होला–महल्ला के त्यौहार के अवसर पर, जो होली के दिनों में खोटा गांव (जिला फिरोजपुर) में हुआ था, बिना सरकारी आज्ञा प्राप्त किए चले गए। सरकार ने इस पर कोई कार्यवाही तो नहीं कि परन्तु यह बात सरकार को बहुत आपत्तिजनक लगी। अगले वर्ष, 1867 में, होली के त्योहार पर सद्गुरु जी ने सरकारी आज्ञा प्राप्त करने के लिए सूबा लक्खा सिंह को लाहौर भेजा परन्तु आज्ञा नहीं मिली। इस पर सद्गुरु जी ने घोषणा कर दी कि सरकार के आनंदपुर जाने की यदि हमें आज्ञा न भी प्राप्त हुई तो भी हम वहां पहुंचेंगे। इस घोषणा पर सरकार ने मौन रह कर सद्गुरू जी को जाने दिया और उन पर देख–रेख रखने को मैक ऐण्ड्रज (डी.आई.जी. पुलिस) को लाहौर से आनंदपुर भेजा। वह 17 मार्च, 1867 को पुलिस कर्मचारियों की एक बड़ी टुकड़ी के साथ आनंदपुर पहुंचा। अगले दिन मेजर परकिंस, डिप्टी कमिश्नर होशियारपुर, भी वहां पहुंच गए। इस अवसर के कई विवरण सरकारी सूचनाओं से प्राप्त हेते हैं। इन्सपेक्टर फज़ल हुसैन की मार्च, 1867 की रिपोर्ट से पता चलता है कि आनंदपुर के मेले में दो दिन में 50 सिक्ख, कूके बने। गुरू राम सिंह जी के साथ, अपने और सूबों की सवारी के लिए, 40 घोड़े थे। उनके जलूस में नगारे बजते थे, ध्वजा फहरती थी। उनके साथ लगभग 8 हजार कूके थे।

इसके बाद सद्गुरू राम सिंह जी बिना सरकारी आज्ञा के ही 25 अक्तूबर, 1867 को दीपावली के अवसर पर अमृतसर पहुंच गए। आनंदपुर के समान ही सरकार ने यहाँ के कार्यक्रम में भी कोई हस्तक्षेप नहीं किया। इस अवसर पर 20 हजार कूके जमा हुए। सारा कार्यक्रम बड़ी सज–धज और उत्साह से हुआ। 27 और 28 अक्तूबर को भी सद्गुरु जी ने धूम–धाम से दरबार साहिब (अमृतसर) पहुंच कर हजारों की संख्या में भक्तों के साथ भेंट चढ़ाई। इस समय दो हजार व्यक्ति कूके बने।

प्रत्यक्ष रूप से सरकार ने कूका कार्यक्रम में कोई बाधा नहीं डाली परन्तु सरकार सद्‌गुरू जी की बढ़ती हुई शक्ति से शंकित अवश्य थी। सरकार कूका कार्यक्रम का मुख्य मंतव्य पंजाब में पंजाबी सरकार की स्थापना समझती थी। सरकारी दृष्टिकोण से प्रत्येक कूका विद्रोही था और सद्‌गुरू लाखों विद्रोहियों के अद्वितीय नेता थे।

सितम्बर, 1866 में ही पंजाब सरकार को एक रिपोर्ट में अम्बाला के कमिश्नर, कर्नल आर.जी. टेलर ने लिखा था, "यह मेरा निश्चित मत है कि कूका आंदोलन का उद्देश्य अंग्रेजों से लड़ना है। सरकार को इसे चेतावनी के रूप में जानना चाहिए।" दो साल बाद डोनोवन नामक एक अंग्रेज ने सरकार को लिखा था, "देश में एक भीषण कुचक्र चल रहा है और गुरु राम सिंह ने हमारे विरूद्ध दो लाख लोगों को विद्रोह करने और अन्त में हमें पंजाब से बाहर निकालने के लिए एकत्रित कर लिया है। अगले वर्ष के आरम्भ में किसी भयानक उथल–पुथल की आशंका है। कूकों की शक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। सभी सिक्ख सरदार इसमें सम्मिलित होते जा रहे हैं। सारे भारत में विद्रोह की गूंज है। इसलिए हमारी सरकार को उदारता से काम नहीं लेना चाहिए।"

1867 तक कूका आंदोलन शांतिमय रूप से चलता रहा। सद्‌गुरू राम सिंह ने भ्रमण कर हर स्थान पर अपने मत का प्रचार किया और अपने संगठन को सुदृढ़ तथा विस्तृत बनाया। इसी बीच कूके प्रायः सभी सिक्ख रियासतों और नेपाल की सेना में भी भर्ती हुए। गुरु राम सिंह जी पर प्रतिबंध होते हुए भी वह सरकारी आज्ञा की अवज्ञा कर एक बार खोटा गए और उन्होंने होली के अवसर पर बड़े–बड़े सम्मेलनों में भाग लिया। एक बार दीपावली पर अमृतसर गए। 1867 में माघ मेले के अवसर पर मुक्तसर गए। उनके साथ 2000 अनुयायी भी थे। बाह्य आडम्बर कम होने के कारण सरकार का संदेह दूर हो गया और 1869 में गुरु राम सिंह जी पर लगे सब प्रतिबंध हटा लिए गए।

अमृतसर हत्याकाण्ड और फाँसी के तख्ते पर

भारत सदा से कृषि–प्रधान देश रहा है। यहाँ गाय को माता मान कर पूजा जाता रहा है। महाराजा रणजीत सिंह के राज्य में तो गो–वध सर्वथा वर्जित था, यहां तक कि सेना में भर्ती होने वाले विदेशी भी गो–मांस नहीं खाते थे। शाह शुजउल्मुल्क और अंग्रेजों ने यह लिखित वचन दिया था कि जब उनकी सेनाएं पंजाब से होकर निकलेंगी तो वह गो–वध न करेंगी।

महाराजा रणजीत सिंह के बाद जब महाराजा दलीप सिंह के नाम से कौंसिल आफ रीजेंसी राज्य करती थी तो सर्वप्रथम रेजीडेण्ट सर जान लारेंस के हस्ताक्षर से ताम्रपत्र पर यह आदेश श्री दरबार साहिब अमृतसर के द्वार पर लटकाया गया था कि अमृतसर में गो–वध नहीं होगा।

मार्च 1849 के अन्त में जब पंजाब में अंग्रेज राज्य हो गया तो सरकार ने पहला कदम यह उठाया कि बूचड़खाने खोलने के आदेश जारी किए। गवर्नर जनरल ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आज्ञानुसार 5 मई, 1849 को यह घोषणा की :– ''अब से किसी को भी अपने कार्यों द्वारा अपने पड़ोसियों के रीति–रिवाजों में हस्तक्षेप करने की आज्ञा न होगी।'' इसके बाद पंजाब के नगरों में बूचड़खाने खोलने और गोमांस बेचने की छूट हो गई। यह आदेश देने में अंग्रेजों की यह भावना भी थी कि वह पंजाब के शासक हो गए हैं और उन पर विदेशी होने के कारण ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं कि वह गो–वध न कर सकें। इसमें गहरी कुटिल नीति भी निहित थी कि हिन्दू–मुसलमानों में फूट डालने के लिए गो वध का प्रचार किया जाए। अंग्रेज सरकार की हमेशा यह नीति रही, फूट डालो और राज करो। सबसे पहले 'गुरू की नगरी' अमृतसर में ही सरकारी आदेश पर अमल किया गया और लाहौरी दरवाजे के बाहर एक बूचड़खाना खोला गया। इससे नगर में घोर असंतोष फैल गया। हिन्दू और सिक्खों ने इसके विरोध में आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। गो–हत्या और सड़कों पर गोमांस बेचने के कारण कई बार हिन्दू–मुस्लिम दंगे हुए, मुकद्दमे चले। अधिकारियों को यह पता चल गया कि बूचड़खाने चालू करने से जनता अत्यधिक असन्तुष्ट है।

यह वह समय था जब गुरु राम सिंह पर से सब प्रकार के प्रतिबन्ध हट चुके थे। कूकों में नए उत्साह की लहर दौड़ रही थी। वास्तव में कूका–आन्दोलन अपनी युवावस्था में था। सद्‌गुरु राम सिंह और उनके सूबे देश को पराधीनता से मुक्त करने को व्याकुल हो उठे। प्राणों की बाजी लगाकर वे कार्यक्षेत्र में उतर आए। सरकार भी इस आंदोलन को कुचलने के लिए हर प्रकार से कटिबद्ध थी। बूचड़खाने खोलने के सरकारी आदेश को कूका वीरों ने एक ऐसा नश्तर समझा जिससे सरकार यह जानने का प्रयत्न कर रही थी कि सिक्ख शरीर में अभी स्वाभिमान का रक्त शेष है या नहीं। कूका वीरों का एक छोटा सा जत्था जिसमें लगभग 20 व्यक्ति थे अपना जीवन उत्सर्ग करने की भावना से पंजाब के नगरों में बूचड़खाने बंद कराने के लिए गुरू नगरी अमृतसर की ओर चल पड़ा। यह जत्था लाहौरी दरवाजे वाले बूचड़खाने से होता हुआ घंटा घर वाले मैदान के बूचड़खाने पर पहुंचा। इससे काफी उत्तेजना रही। 14 जून, 1871 की आधी रात को इन लोगों ने दरबार साहिब के निकट वाले बूचड़खने पर धावा बोल दिया। वहां बंधी गउओं को मुक्त कर बूचड़ों (कसाईयों) का सर धड़ से अलग कर सीधे भैणी की ओर चल दिए। इधर अमृतसर में सभी प्रतिष्ठित हिन्दू व निहन्ग पकड़े गए। उन्हें असहाय यातनाएं देकर विवश किया गया कि निर्दोष होते हुए भी वह स्वयं को अपराधी स्वीकार करें। इस प्रकार विवशता से अपराध स्वीकार करने वाले निर्दोष व्यक्तियों को मृत्युदण्ड देकर अंग्रेजों के न्याय का मिथ्या नाटक समाप्त हुआ।

उधर वे वीर कूके जिन्होंने आवेश में आकर गो–हत्यारों का वध किया था भैणी पहुंच कर सद्‌गुरु जी के सामने हाजिर हुए। गुरु जी ने पूछा कि अमृतसर हत्या काण्ड के मुकद्दमे का क्या परिणाम हुआ? उत्तर मिला, उन्हें मृत्युदण्ड की आज्ञा हुई। साथ ही इन कूके वीरों ने स्वीकार किया कि ''यह हत्याएं तो हमने की थीं।'' इस पर गुरु जी ने आदेश दिया कि ''सिक्खो, अपराध किसी का और फल कोई और भोगे, यह अनुचित है। तुरन्त अमृतसर पहुंच कर उन निर्दोषों को मुक्त कराओ और अपने कर्म का फल स्वयं भोगो।'' उन्होंने अमृतसर पहुंचकर पुलिस को

आत्मसमर्पण कर दिया। पुलिस ने दण्डित हिन्दुओं व निहंगों को मुक्त कर इन वीर कूकों को अदालत में पेश किया। 31 अगस्त, 1871 को इनमें से 4 को मृत्युदण्ड और 3 को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया। अमृतसर के प्रत्येक नर–नारी की जिह्वा पर इन वीर कूकों की चर्चा थी। अपराध स्वीकार कर निर्दोषों को काल के गाल से छुड़ाकर अपना बलिदान करना कोई साधारण बात नहीं थी।

15 सितम्बर, 1871 इन कूका वीरों के मृत्यु–आलिंगन का दिवस था। उस दिन प्रातः अमृतसर के सरोवर में स्नान कर, कड़ाह प्रसाद ले, ढोलक–मंजीरों के साथ प्रेमावेश में झूमझूम कर कीर्तन करते ये देशभक्त अपार जनसमुदाय के साथ मजीठा रोड़ के किनारे एक वट वृक्ष पर, रामबाण में जहाँ अब विक्टोरिया जुबली अस्पताल है, फाँसी पर लटकने पहुंच गए। ताँत की डोरी के स्थान पर रेशम की रस्सियाँ मँगाई गई, जिन्हें गले में बांधकर ये वीर कूके सहर्ष शहीद हो गए। चारों ओर से यही नाद सुन पड़ा :– ''वतन से प्यार करने वाले शहीद होकर ही जीवन सफल करते हैं।'' इन शहीदों में से एक अपनी माँ का इकलौता बेटा था। फाँसी के पहले माँ ने अपने पुत्र तथा अन्य तीन कूकों का तिलक और ग्रंथसाहब का पाठ किया और कहा, ''मैं धन्य हूँ कि मेरे लड़के ने गाय और देश के लिए अपना बलिदान किया है।'' देश पर इस अनुपम बलिदान का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी स्तुति में मुक्त कण्ठ से यह स्वर गूँज उठाः

'जननी जने तो भक्तजन, कै दाता, कै सूर।
नहीं तो जननी बांझ रहे, काहि गँवावे नूर।''

अमृतसर के बूचड़ हत्याकांड के 20–25 दिन बाद कूकों का एक जत्था भैणी जाते हुए लुधियाना से 25 मील दूर रायकोट कस्बे से निकला। उसे पता चला कि गुरुद्वारे के निकट वहाँ बूचड़खाना है जिसमें नित्य गोवध होता है। उन्होंने निश्चय किया कि गोरक्षा और गुरुद्वारे की पवित्रता के लिए बूचड़ों का सफाया कर डाला जाए। इस निर्णय के अनुसार नाभा राज्य के सन्त मंगल सिंह, संत गुरमुख सिंह और संत

मसतान सिंह ने 15 जुलाई को रात के 11बजे रायकोट के बूचड़ों पर धावा बोल दिया और उन्हें मारकर साफ बच कर निकल गए। पुलिस ने इन तीनों अपराधियों तथा निर्दोष सूबे ज्ञानी रतन सिंह और रतनसिंह को भी गिरफ्तार कर इन पांचों पर मुकद्दमा चलाया। पहले तीन को हत्या के अपराध में 5 अगस्त, 1871 को रायकोट में फांसी दी गई। सूबा ज्ञान सिंह और रतन सिंह को, निर्दोष होते हुए भी, 26 नवम्बर, 1871 को लुधियाना में फांसी दी गई। कूकों में अदम्य उत्साह और देश पर मर मिटने की भावना दिनों–दिन बढ़ रही थी। दूसरी ओर सरकार ने सशक्ति होकर तेजी से दमनचक्र चलाया। सरकार गुरु राम सिंह के बढ़ते हुए प्रभाव और कूकों के उत्साह से बौखला उठी। 1871 में सरकार ने कूकों और उनके गुरु जी को दण्ड देने का दृढ़ निश्चय किया। साथ ही राजा शिवराज सिंह काशीपुरा ने कूका–आन्दोलन पर यह रिपोर्ट सरकार को दी कि गुरु राम सिंह का ताँतिया टोपे के अनुज से निकट सम्पर्क है और कुंवर सिंह का एक निकटस्थ सम्बन्धी विद्रोह खड़ा करने की योजना बना रहा है। स्थिति यह हो गई कि जरा सी चिंगारी लगने पर भयंकर मुठभेड़ हो सकती थी।

मलेरकोटला का वीभत्स नर संहार

मलेरकोटला पंजाब के लुधियाना जिले में एक मुस्लिम रियासत थी। इसके नवाब मर चुके थे और उनका अल्पव्यस्क पुत्र गद्दी पर आसीन था। राज्य में पुलिस मनमानी करती थी और न्याय का शासन ढीला और अनियंत्रित था। भीतर ही भीतर हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य भड़काने का भी प्रयास था। अंग्रेजों को पटियाला, नाभा और जींद के महाराजाओं का समर्थन प्राप्त था। कूकों का संगठन अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही था। वह इतना सुदृढ़ नहीं बन पाया था कि इन सब विरोधी शक्तियों से खुलकर सशस्त्र संघर्ष कर विजयी हो सके। गुरु राम सिंह जी को तो इस का पूरा ज्ञान था परन्तु उनके अनुयायी सूत्रों में कुछ उतावलापन था।

भैणी ग्राम में 11 जनवरी, 1872 से 13 जनवरी तक एक वृहत् मेला लगा जिसमें हजारों कूकों ने भाग लिया। दूर–दूर से कूके उसमें भाग लेने आए थे। 11 जनवरी को लोहड़ी का त्योहार था और 12 जनवरी को माघ की संक्राति। 13 जनवरी को माघी मेले के समय मलेरकोटला राज्य के फरवाही ग्राम का नंबरदार गुरुमुख सिंह सरकारी लगान अदा करने कोटला जा रहा था। मार्ग में उसने एक मुसलमान को बैल पर सलगम–मूलीयां लादे और स्वयं भी उसी पर सवार आते देखा। गुरमुख, जो कूका था, को यह देखकर गरीब बैल पर दया आयी और उसने उस मुसलमान से बैल पर दया करने की विनयपूर्वक प्रार्थना की। इस पर उसने गुरुमुख सिंह को अपशब्द कहे और शोर मचा कर अन्य लोगों को भी वहां जमा कर लिया। लोग उस कूके वीर को पकड़ कर कोटला कोतवाली में ले गए। वहाँ के मुसलमान कोतवाल ने यह निर्णय दिया कि वह बैल उस कूके सिक्ख के सामने ही जिबह करा दिया जाए। उसी समय बैल को गिरा कर हलाल कर दिया गया। असहाय गुरुमुख सिंह को खूब पीटने के बाद कोतवाली से बाहर निकाल दिया गया। वह वहाँ से दुःखी होकर सीधा भैणी पहुंच कर भरे दीवान में गया और अपनी दुःखद कथा कह सुनाई। इससे लोगों में उत्तेजना बढ़ी।

भैंणी में, जहां एकांत में सद्गुरू राम सिंह जी भजन किया करते थे, सरदार हीरा सिंह व सरदार लहना सिंह के नेतृत्व में कुछ सिक्ख कूकों ने मलेरकोटला में गो–वंश की हत्या और निर्दोष सूबे ज्ञानी रतन सिंह और संत रतन सिंह की फांसी दिए जाने पर विचार किया। उन्होंने निर्णय किया कि गो–रक्षा और गुरूमुखसिंह के अपमान का बदला लेने के लिए मलेरकोटला पर भयंकर धावा बोला जाए और इसके लिए मलौध के सरदार से अस्त्र–शस्त्र प्राप्त किए जाएं। दो वीरांगनाओं ने ध्वज फहराते हुए आहवान किया कि ''वीरो अपने कर्तव्यपालन के लिए, अपने शीश न्योछावर करने को तैयार हो, उठो।'' साथ ही उत्साहित कूकों ने गुरु राम सिंह से आग्रह किया कि जिस विप्लव की योजना इतने दिनों से बनाई जा रही है उसे आज ही आरम्भ कर देना चाहिए। परन्तु पर्याप्त तैयारी न होने के कारण गुरु जी उनसे सहमत नहीं हुए। गुरु जी ने सबसे अपने–अपने घर लौट जाने को कहा और लोगों से शान्त रहने की विनयपूर्वक प्रार्थना की। बहुत से लोग शान्त हो गए। परन्तु लगभग 150 व्यक्तियों ने प्रतिहिंसा की भावना से विद्रोह खड़ा करने की घोषणा कर दी। इस पर गुरु जी ने संगठन को बचाने और पूरी तैयारी से विप्लव करने के विचार से 13 जनवरी, 1872 को दिन के दो बजे वहां तैनात पुलिस अधिकारी से कहा कि मस्ताने उनके नियन्त्रण से बाहर हो गए हैं। गुरु जी ने सरदार हीरा सिंह और सरदार लहना सिंह को इस समूह का नेता बताया। जब पुलिस अधिकारी ने गुरु जी की इस सूचना पर कोई ध्यान नहीं दिया, तो गुरु जी ने बाबा लक्खा सिंह को लुधियाना पहुंचकर इस स्थिति की सूचना डिप्टी कमिश्नर को देने के लिए भेजा। बाबा लक्खा सिंह ने लुधियाना पहुंचकर डिप्टी कमिश्नर से सब बातें कहीं। इसका परिणाम सिर्फ यह हुआ कि बाबा लक्खा सिंह को उसी समय गिरफ्तार कर लिया गया।

इधर कूका–दल ने सरदार हीरा सिंह और लहना सिंह के नेतृत्व में 14 जनवरी को रात 7 बजे मलौध के किले पर चढ़ाई कर दी। कूकों की संख्या 200 थी। दुर्ग के सरदार बदन सिंह ने जब एक बार गुरु जी से सेवा का आदेश मांगा था तो गुरु जी ने कहा था कि समय आने पर

सेवा बता दी जाएगी। इस वचन का स्मरण करा कर उनसे शस्त्र और घोड़े आदि देने का आग्रह किया गया। परन्तु विद्रोह को अपरिपक्व जानकर सरदार को, साथ देने का साहस न हुआ। ऐसी दशा में कूकों ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने का बलपूर्वक प्रयास किया। सरकारी पत्रों के अनुसार इस आक्रमण का एक कारण यह भी था कि सरदार बदन सिंह महाराजा पटियाला के निकट सम्बन्धी थे। महाराजा ने बूचड़ हत्याकांड में सरकार की सहायता की थी। हो सकता है उसका बदला लेना भी आक्रमण का लक्ष्य रहा हो। इस आक्रमण में सरदार बदन सिंह घायल हुए, दो हत्याएं हुई और कूके दो–तीन घोड़े ले गए। कूकों में से दो की हत्या हुई।

डिप्टी कमिश्नर ने पटियाला और मालेरकोटला राज्यों के वकीलों को बुला कर चेतावनी दे दी थी कि कूके उनके राज्यों पर आक्रमण कर रहे हैं। साथ ही जिला पुलिस सुपरिटेंण्डेण्ट को भी सूचना दी कि डिप्टी इन्सपेक्टर पुलिस ने कूकों की टोली का न तो पीछा किया और न उन पर देखरेख रखी।

मलौध की घटना के बाद लुधियाना के डिप्टी–कमिश्नर ने महाराजा पटियाला को चिट्ठी और तार से सूचना दी कि कूकों के नेता हीरा सिंह और लहना सिंह को गिरफ्तार किया जाए। वह स्वयं भी इस घटना की जांच करने के लिए मलौध रवाना हो गए। इसके अतिरिक्त गुरु राम सिंह और उनके प्रमुख सूबों को उपरोक्त काण्ड में भाग लेने वालों का पता लगाने के लिए मलौध बुला भेजा।

लुधियाना के नायब तहसीलदार ने लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर को सूचना दी कि लहना सिंह और हीरा सिंह खुला ऐलान कर रहे हैं कि वह पहले कोटला फिर संगरूर या जींद जाएंगे और बाद में दिल्ली। उनके साथ लगभग 300 कूके हैं।

मलौध से मलेरकोटला नौ मील है। मलौध से चलकर वीर कूके कोटला से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर एक पुराने बाग में रात को ठहरे और 15 जनवरी, 1872 को प्रातः 7 बजे मलेरकोटला राज्य की राजधानी

कोटला नगर में घुसे। वह नवाब मलेरकोटला के महल की ओर बढ़ रहे थे। पास ही सरकारी खजाना था। मार्ग में उन्होंने चिड़ीमार मोहल्ले पर आक्रमण किया जहां गो–हत्यारे पर्याप्त संख्या में थे।

राज्य के अधिकारियों को 14 जनवरी की रात को ही कूकों के आने की सूचना प्राप्त हो चुकी थी। वह पूरी तरह तैयार थे। उन्हें पड़ोसी राज्यों से भी पुलिस और सेना की सहायता प्राप्त हो चुकी थी। कूका–आक्रमण की सूचना पाते ही पुलिस और सेना कूका सिंहों के सम्मुख आ डटी। पुलिस और सेना की संख्या कूकों से नौ–दस गुनी थी। अपने सिर पर कफन बाँधें कूकों ने घमासान युद्ध किया। उन्होंने केवल लाठियों और बरछों से ही सशस्त्र शत्रु दल में भगदड़ मचा दी। जरा अवकाश मिलते ही कूका वीरों ने अपने घायल साथियों की सुधि ली। परन्तु सेना और पुलिस ने पुनः आक्रमण किया और मुंह की खाई। तीसरी बार राज्य के सैनिक दृढ़ता से संगठित होकर कूका वीरों पर टूट पड़े परन्तु कूकों ने उनके दांत ऐसे खट्टे किए कि उन्होंने फिर आक्रमण करने का साहस ही नहीं किया। सिविल सर्जन, लुधियाना की 15 जवनरी, 1872 को रिपोर्ट के अनुसार 7 कूके शहीद हुए और 29 घायलों को वह उठा कर ले गए। विरूद्ध पक्ष के 8 मरे, 4 से अधिक घायल हुए और 9 के साधारण चोटें आई। मरने वालों में वह कोतवाल भी था जिसने गुरूमुख सिंह के सामने बैल का वध किया था।

जब कूका वीरों ने देखा कि उनके सम्मुख कोई नहीं रहा तो वह अपने साथियों को उठाकर कोटला से बाहर निकल कर पटियाला राज्य की ओर चल पड़े। वह कोटला से चले ही थे कि मालेरकोटला के एक पठान योद्धा समुदखाँ ने अपने कुछ साथियों को लेकर उनका पीछा किया। कोटला से 7–8 मील दूर भूतन–वाले टीले के पास पहुंच कर उसने अपने घोड़े पर से ललकारा, ''सिंहो! खड़े हो जाओ। कहाँ है हीरा सिंह?'' सरदार हीरा सिंह ने घोड़े पर से समुदखां को ललकार कर कहा, ''सावधान हो जा, पठान! फिर न कहना पता न चला। प्रथम तू ही प्रहार कर ले।'' सुनते ही पठान ने सरदार के सर पर फुरती से तलवार का प्रहार किया। सरदार ने ढाल न होने के कारण अपना बायाँ हाथ रक्षार्थ

उठा दिया जिससे सर तो बच गया पर कलाई कट गयी। पर सरदार ने जब वार किया तो पठान का सर धड़ से कट कर पृथ्वी पर जा पड़ा।

कूका वीरों ने सरदार हीरा सिंह के नेतृत्व में पटियाला राज्य के निकट रड़ ग्राम में डेरा डाल दिया। यह स्थान कोटला से लगभग दो–तीन मील था। कोटला से सरकारी अधिकारियों ने शेरपुर के तहसीलदार को तुरन्त सूचना भेज दी थी। शेरपुर पटियाला राज्य में ही रड़ से कुछ मील पर है। वहाँ कुछ समय बाद शेरपुर का थानेदार उत्तम सिंह नामधारी वेश में उनके पास आया और बड़ी नम्रता से भोजन के लिये आमन्त्रित किया। उसके कपट को समझकर भी सरदार हीरा सिंह ने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। थानेदार उन्हें अपने घर ले गया और वहाँ उन्हें गिरफ्तार करा दिया। पटियाला राज्य के नायब नाज़िम नियाज़ अली ने इन 68 वीरों को अमरगढ़ के किले में बन्द कर दिया। सरकारी सूचना के अनुसार इनमें से 29 घायल थे। लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर कावन ने 17 जनवरी, 1872 को कोटला से पंजाब के गृह सचिव को दिल्ली तार भेजा कि ''शांति स्थापित हो गई। लगभव 100 कूके मारे गए, घायल हुए या पकड़े गए। पटियाला, नाभा और जींद पूरी सहायता दे रहे हैं।'' कावन ने ही लुधियाना से अम्बाला के कमिश्नर को तार द्वारा सूचित कर दिया था कि ''400 कूकों ने मालेरकोटला पर आक्रमण कर दिया, आठ या दस मारे गए। सेना शीघ्र भेजिए।'' यह तार देने के बाद कावन स्वयं 16 जनवरी को कोटला पहुंच गया था। उसी दिन नायब नाज़िम, गिरफ्तार किए 68 कूकों को लेकर मालेरकोटला पहुंच गया। वहाँ रियासतों की सेनाएं, रिसाले और तोपखाने थे। जालन्धर, दिल्ली तथा अम्बाला से आने वाली सेनाओं की प्रतीक्षा थी।

17 जनवरी, 1872 को कूका देश भक्त वीरों को मलेरकोटला के जमालपुर गाँव के समीप एक रक्कड़ पर ले जाया गया जो आज तक 'कूकों का रक्कड़' कहलाता है। वहाँ एक ओर कतार में कूकों को खड़ा किया गया और दूसरी ओर रिसाले, फौजें और उनके अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित सरदार खड़े थे।

कावन की आज्ञानुसार अम्बाला डिवीजन की सात तोपें वहाँ लगा दी गई। इससे पहले 17 जनवरी को कमिश्नर फोरसाइथ ने लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर कावन को एक अर्ध–सरकारी पत्र लिखा था जिसका आशय था :– ''जिन अपराधियों को कोटला राज्य में पकड़ा गया है उनको बिना चीफ कोर्ट भेजे कानून द्वारा फाँसी दी जा सकती है। मैं नियम के अनुसार और जल्दी कार्यवाही पूरी कराने शीघ्र ही कोटला आ रहा हूँ।'' इसके बाद फिर फोरसाइथ ने कावन को सूचित किया कि ''मैं विनय करता हूँ कि आप तुरन्त उन सबके विरूद्ध, जो मृत्यु दण्ड के योग्य हों, मुकदमे तैयार करें। मैं उन पर बिना विलम्ब आदेश दूँगा। यह मामला इस सीमा तक आवश्यक नहीं है कि साधारण निर्धारित नियमों का उल्लंघन किया जाए। आपने इस काम में जल्दी करने की जो इच्छा प्रकट की है उसके कारण मैं बहुत शीघ्र मलेरकोटला जा रहा हूँ।'' इसके उत्तर में डिप्टी कमिश्नर ने 17 जनवरी को अम्बाला के कमिश्नर को लिखा कि ''आपके लिए कोटला आना आवश्यक नहीं। मैं जो कुछ हुआ उसका वर्णन लिखता हूँ।'' उसने मलौध और कोटला की घटनाओं का पूरा हाल देने के बाद अन्त में लिखा : ''मैं बन्दियों के आने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि मलौध और कोटला के आक्रमणों में जिन्होंने भाग लिया उन सबको मृत्यु के घाट उतार दूँ। क्योंकि मेरा पूर्ण विश्वास है कि पंजाब सरकार उन बंदियों को जो अपराध करते हुए पकड़े गए हैं तुरन्त मृत्यु दण्ड दिए जाने का समर्थन करेगी।''

इसके बाद कावन ने अम्बाला के कमिश्नर को 17 जनवरी के अपने पत्र में लिखा :– ''68 विद्रोही कूके आज 'रड़' से लाए गए। इनमें दो स्त्रियाँ और 66 पुरूष हैं। 22 घायल हैं जिनमें अधिकांश को मामूली चोटें हैं।

''इन बन्दियों का व्यवहार असंयत और उद्दण्डतापूर्ण था। वे सरकार और देशी रजवाड़ों को बहुत बुरी गालियाँ दे रहे थे। उन सभी ने स्वीकार किया कि वे मलौध और कोटला के आक्रमणों में उपस्थित थे और अपने कार्य की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि हमने हथियार–प्राप्ति के लिए मलौध पर हमला किया और कोटला पर गो–हत्यारों का वध करने के लिए।''

"दो स्त्रियां पटियाला की थीं। उन्हें मैंने पटियाला के सेनाध्यक्ष को पटियाला भेजने के लिए दे दिया। 49 विद्रोहियों को तोपों से उड़वा दिया। आज ही दोपहर बाद कोटला महाराजा के परेड मैदान में पटियाला, नाभा, जींद और कोटला की सेनाओं के समक्ष यह सब हुआ। मेरा विचार था कि 50 को तोप से उड़वा दूँ और शेष 16 विद्रोहियों को कल मलौध में फाँसी दे दूँ। परन्तु एक ने रक्षकों के पंजे से छूटकर मेरे ऊपर भंयकर प्रहार किया। उसने मेरी दाढ़ी पकड़कर मुझे गला दबाकर जान से मारना चाहा। वह बहुत शक्तिशाली व्यक्ति था। उससे छुटकारा पाने में बड़ी कठिनाई हुई। उसके बाद उसने कुछ देशी अधिकारियों पर आक्रमण किया जो मेरे निकट खड़े थे। इन अधिकारियों ने तलवार से उसके टुकड़े कर दिए।

जिन विद्रोहियों को तोप से उड़ाया गया उनमें हीरा सिंह और लहना सिंह थे।"

उपरोक्त वर्णन मि. कावन का है। स्वतन्त्र सूत्रों का वर्णन इससे कुछ भिन्न है। उनके अनुसार पटियाला, नाभा व जींद की ओर से कूकों को दण्ड देने के लिए 9 तोपें भेजी गई थीं। कावन की आज्ञानुसार इनमें से 7 तोपें मोर्चे पर लगा दी गईं। कावन ने उनको तोपों से उड़ा देने का आदेश दिया जो उसकी अधिकार सीमा से बाहर था और कमिश्नर अम्बाला की आज्ञा का भी उल्लंघन था। देशभक्त कूके तोपों को देखकर मुस्करा रहे थे। सहस्त्रों की संख्या में दर्शक भी कूकों के साहस और वीरता से आश्चर्यचकित थे। कावन अपनी पत्नी सहित कुर्सी पर बैठा था। दो स्त्रियाँ भी, माता इन्दु कौर और खेम कौर, जिन्हें कावन ने बिना दण्ड दिए पटियाला के सेनाध्यक्ष को सौंप दिया था, इस अद्‌भुत बलिदान की साक्षी थीं। उन्होंने बताया कि कूका वीरों ने तोपों के मुंह पर बाँधे जाने से इन्कार कर दिया और वे उमंग से एक दूसरे से आगे बढ़ कर तोपों के मुंह के सामने जाकर खड़े होते थे। वे ये शब्द कहतेः–

सूरा सो पहचानिए जो लरे दीन के हेत।
पुरजा–पुरजा कट मरे कबहुं न छाड़े खेत।।

जिस मरने ते जग डरे मेरे मन आनन्द।
मरने ही तै पाइये पूरण परमानन्द।।

उनको आदेश था कि तोप की ओर पीठ करके खड़े हों। परन्तु उन्होंने यह गर्जना कर इस आदेश का पालन करने से इंकार कर दिया कि ''शूरवीर पीठ में नहीं किन्तु छाती पर वार सहकर प्रसन्न होते हैं। मृत्यु को पीठ दिखाना कायरता है।''

कावन ने सात मस्तानों को तोप के सामने खड़ा होने का आदेश दिया। प्रथम जत्थे में सरदार हीरा सिंह और लहना सिंह भी थे। तोपची ने फायर किया और तीन बार चलाने पर भी तोपें न चलीं। कानून को झुठलाया! और फिर वीर कूकों ने छाती तान पर कहा – ओए बिल्लेयां। अब तोप चला! हमारे गुरु जी का आदेश आ गया है। अब तोपें चलेंगी। तोपें चलीं और मस्ताने सिहों के भौतिक शरीर क्षण भर में छिन्न–भिन्न हो गए। इस प्रकार सात बार में 49 वीर कूके सिंह शहीद हो गए। अन्तिम बारी माता खेमकौर के इकलौते 12 वर्षीय लाल, पचासवें वीर, बिशनसिंह की आई। इसकी भोली–भाली सूरत और बाल्यावस्था देख कर कावन की पत्नी ने अपने पति से उसे क्षमा करने का आग्रह किया। कावन ने कहा, ''इसको क्षमा किया जा सकता है यदि यह ये कह दे कि वह रामसिंह का शिष्य नहीं है।'' यह सुनते ही बालक आवेश में आकर उछला और उसने झपटकर कावन की दाढ़ी पकड़ ली और तब तक नहीं छोड़ी जब तक कि पास खड़े अधिकारियों ने अपनी तलवारों से उस बालक के टुकड़े–टुकड़े न कर डाले।

इस घटना में कावन ने शीघ्रता से मनमानी की और कमिश्नर के आदेश की अवहेलना भी। इसके प्रमाण में कमिश्नर फोरसाइथ का पत्र और उसकी हस्त–लिखित आत्मकथा का सबंद्ध अंश उद्धृत किए जाते हैं : पत्र में लिखा था, ''मैं स्वयं घटनास्थल पर पहुंच रहा हूँ। मेरे आने से पूर्व किसी विद्रोही को मृत्युदण्ड न देना किन्तु उनका मुकदमा बनाना।'' यह आदेश कावन को उस समय प्राप्त हुआ जब अन्तिम जत्था तोपों के सामने खड़ा था। कावन ने पत्र को पढ़ कर जेब में डाल लिया

और तोपों के सामने खड़े सात व्यक्तियों के अन्तिम जत्थे को भी उपरोक्त आदेश की अवहेलना करते हुए तोपों से उड़वा दिया।

जब फोरसाइथ को यह सूचना प्राप्त हुई कि कावन ने उसके आदेश के विपरीत वीर कूकों को तोप से उड़वा दिया तो उसने परिस्थिति को देखते हुए विवश हो कावन के इस बर्बर कार्य का समर्थन किया। फोरसाइथ ने अपनी आत्मकथा में लिखा : ''मैंने लुधियाना से लिखित आदेश भेजा था कि जब तक मैं न आऊँ, वह विद्रोहियों का मुकद्दमा ही देखें, उन्हें मृत्युदण्ड न दें। किन्तु कावन ने निरंकुश कार्य किया और मेरे पत्र को अपनी जेब में डालकर उसे कार्यरूप में लागू करने से इंकार करते हुए अभियुक्तों को मौत के घाट उतार दिया। जब मैंने यह सुना तो मैं चिन्तित हो उठा और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया कि यदि मैं उसके कार्य का विरोध करता हूँ तो उससे यह प्रकट होता है कि अफसरों में मतभेद हैं जिससे इस देश के लोग लाभ उठा सकेंगे। अतएव मैंने यह निर्णय किया कि कावन के कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लूँ। मैंने एक पत्र लिखकर उनकी कार्यवाही का समर्थन किया।''

इस प्रकार 50 कूका वीरों का अन्यायपूर्ण और अमानुषिक वध कर मलेरकोटला के शेष 16 कूका वीरों पर अगले दिन, 18 जनवरी, 1872 को, मलेरकोटला में कावन ने मुकद्दमा चलाने का स्वाँग रचा। मलेरकोटला राज्य की ओर से 16 कूका वीरों पर 15 जनवरी की प्रातः डकैती और हत्या के अपराध में मुकद्दमा चला कर न्याजअली, पंजाब सिंह और नरायन सिंह के बयान लिए गए। अभियुक्तों ने उनसे कोई प्रश्न नहीं किए। 16 अभियुक्तों के बयान कावन ने लिखे, परन्तु मिसल में नहीं रखे। कावन ने अपने आदेश में सभी अभियुक्तों के बयानों को अपराध की स्वीकृति माना तथा उनको अपराधी घोषित कर प्राणदण्ड दिया और मुकद्दमा कमिश्नर और कोटला राज्य के एजेण्ट फोरसाइथ की अदालत में भेज दिया। वह भी वहीं उपस्थित थे और उन्होंने भी कावन के आदेश का समर्थन कर दिया। इसके बाद इन 16 कूका वीरों को भी तोपों से उड़ा दिया। एक कूका छोटे कद का होने के कारण तोप के मुँह तक नहीं

पहुंच सका। उसने कुछ (ईंटें) मिट्टी के ढेले जमा की और उन पर खड़ा होकर शहीद हुआ। पहले कावन ने अकेले, जो कुछ किया था अब फोरसाइथ ने भी वही किया। भारत सरकार ने इन हत्याओं को पूर्णतया अवैध घोषित किया और डिप्टी कमिश्नर को पूरी जाँच होने तक मुअत्तिल कर दिया गया।

गुरू रामसिंह जी का बर्मा निर्वासन

अंग्रेज सत्ता को सद्‌गुरू राम सिंह जी और उनके प्रमुख सूबों के विरूद्ध कोई ऐसी सामग्री नहीं प्राप्त हो सकी कि उन पर मुकद्दमा चलाया जा सके। परन्तु अधिकारियों की सूचनाओं से सरकार को इस बात की चिन्ता बढ़ती जा रही थी कि नामधारी पंथ और कूका आन्दोलन की शक्ति को किस प्रकार रोका जाए। सद्‌गुरू राम सिंह जी का कार्यक्रम और कार्यप्रणाली शांतिमय थी। वह सशस्त्र संघर्ष या हिंसात्मक उत्पात के सर्वथा विरूद्ध थे। उन्होंने पूरी शक्ति से अपने अनुयायियों को नियन्त्रण में रखने का सदा और पूर्ण प्रयत्न किया। बाद में जितने भी मुकदमे चले और बयान हुए उनमें सद्‌गुरू राम सिंह जी पर कोई भी आरोप न लग सका। उनके विरूद्ध केवल एक शस्त्र भारत सरकार के पास रह गया था कि वह बिना मुकद्दमा चलाए मलेरकोटला काण्ड का बहाना लेकर कुछ सूबों सहित गुरू राम सिंह जी को 1818 के रेग्युलेशन एक्ट–तीन के अधीन देश से निर्वासित कर दे।

इसी अभिप्राय से 16 जनवरी को पंजाब के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ने वाइसराय को तार दिया कि ''देश सुरक्षित नहीं है जब तक नेता मुक्त है। अतः मैंने फोरसाइथ (कमिश्नर, अम्बाला) को राम सिंह और प्रमुख सूबों को गिरफ्तार करने का अधिकार दे दिया है।'' कावन ने गुरू राम सिंह को 16 जनवरी को मलौध बुलाकर भैणी वापिस भेज दिया था।

इस तार के बाद 16 जनवरी, 1872 को ही पंजाब सरकार के सेक्रेटरी ने भारत सरकार के सेक्रेटरी को अपने पत्र में लिखा कि लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ने गुरू राम सिंह और उनके अत्यन्त प्रभावशाली 9 सूबों के गिरफ्तारी के आदेश दे दिए हैं। जितनी जल्दी संभव होगा गुरू राम सिंह गिरफ्तार किए जाएंगे। गिरफ्तारी के बाद वह तुरन्त इलाहाबाद भेज दिए जाएंगे क्योंकि लेफटीनेण्ट गवर्नर उनको पंजाब में रखना उचित नहीं समझते। साथ ही प्रार्थना की कि वाइसराय उनके वारण्ट 1818 के रेग्युलेशन– तीन के अन्तर्गत जारी कर दें। दूसरा पत्र भेजकर अगले दिन पहाड़ा सिंह का नाम भी इस सूची में शामिल करने की प्रार्थना की।

इसके बाद कमिश्नर फोरसाइथ, ने संक्षेप में गुरू राम सिंह के पंजाब से निष्कासन और राजबन्दी बनाने के कारण दिए, जिनमें केवल उसकी अपनी आशंकाएं और मत का ही विश्लेषण मात्र है। गुरु राम सिंह का कोई अपराध निर्धारित नहीं किया जा सका।

कमिश्नर ने कर्नल वेली को आदेश दिया कि सद्‌गुरू राम सिंह को गिरफ्तार करें। लुधियाना से चलने पर मार्ग में वेली को ज्ञात हुआ कि डिप्टी इन्सपेक्टर, गुलाब सिंह उन्हें गिरफ्तार करने जा चुका है। कर्नल वेली रुक गए। गुलाब सिंह ने भैणी के बाहर से ही गुरु जी को सरकार द्वारा बुलाए जाने का संदेश भेजा। सद्‌गुरु तो उस समय की प्रतीक्षा में ही थे। उन्होंने काली कम्बली ओढ़ ली और घोड़ी पर न चढ़, बैलगाड़ी पर ही सवार होकर चलने को तैयार हो गए। उनके पिता जी प्रेम से द्रवित हो उठे। सद्‌गुरु जी ने अपने अनुज महाराज बुध सिंह जी को उपदेश दिया, "संगत को धैर्य दें और देश सेवा में संलग्न रखें।" सद्‌गुरू जी ने जयकारा गजा के गाड़ी चलाने का आदेश दिया। भैणी से एक मील दूर लुधियाना रोड़ पर एक गांव के निकट बहुत सी पुलिस और गोरखा पलटन प्रतीक्षा में थी। सद्‌गुरू जी इस लश्कर के साथ आधी रात तक लुधियाना पहुंच गए। कमिश्नर फोरसाइथ ने लिखा है कि "मैंने कूकों के नेता राम सिंह को बंदी बनाने का आदेश लाट साहब से मांगा किन्तु सफल न हुआ। अतः बिना आज्ञा प्राप्त किए ही प्रस्थान करने को विवश हो गया। मेरा काम राम सिंह को गिरफ्तार कराना था, जो बड़ी सतर्कता से करना था। मैंने उन्हें रात को अपने पास बुलाया और आदेश दिया कि एक स्पेशल रेलगाड़ी तैयार रखी जाए। जैसे ही वह लुधियाना पहुंचें वैसे ही पहले से तैयार गारद को उन्हें सौंप दिया जाए और ट्रेन द्वारा दिल्ली भेज दिया जाए। इसकी सूचना तार द्वारा लैफ्टिनेण्ट गवर्नर को दे दी और उन्होंने इसकी पुष्टि कर दी।"

18 जनवरी 1872 को प्रातः 4 बजे लुधियाना से सद्‌गुरू राम सिंह जी को अपने सेवक नानू सिंह, सूबा लक्खा सिंह, सूबा साहब सिंह, और सूबा जवाहर सिंह के साथ इलाहाबाद रवाना किया गया । वे इलाहाबाद पहुंचने पर प्रयाग के किले में नज़रबन्द किए गए।

सद्‌गुरू राम सिंह जी को इलाहाबाद भेजने के बाद फोरसाइथ ने कर्नल वेली को भैणी भेजा। वेली 18 जनवरी को प्रातः 40 गोरखा घुड़सवारों के साथ भैणी पहुंचा। वहां से सूबों को बन्दी बनाकर लुधियाना भेज दिया। इनमें से चार को स्पेशल ट्रेन से इलाहाबाद भेजा गया। वेली के कथनानुसार भैणी में उस समय केवल 150 कूके थे। उनमें कई स्त्रियां भी थीं जो चर्खा चलातीं और गुरु–घर की सेवा करती थीं। सब को भैणी से बाहर निकाल दिया गया। सद्‌गुरु राम सिंह के घर की तलाशी ली गई। उस समय आसपास के गावों के नम्बरदार भी आ गए थे। वहां से 36 फरसे, अनेकों चक्र, 9 गंडासे तथा बहुत सी लाठियां और खुखरियां बरामद हुई। वहां दो दिन की तलाशी में भिन्न–भिन्न स्थानों से 1500 रूपये नकद और सोने–चांदी के आभूषण मिले। इनके अतिरिक्त बहुमूल्य दुशाले, किनारियां और बेल–बूटों वाले वस्त्र भी प्राप्त हुए। यह सब सामान बंद करके सरकारी कोष में सुरक्षित रखने के लिए लुधियाना भेज दिया गया। घरों में ताले लगा दिए गए। गुरु–घर पर आश्रित रहने वालों को वहां से निकाल दिया गया। एक डिप्टी इंस्पैक्टर के अधीन 20 सिपाहियों की गारद वहाँ रख दी गई। पशुशाला की रक्षा के लिए कुछ व्यक्ति छोड़ दिए गए। वहाँ 22 पशु थे। घर में केवल सद्‌गुरू जी के 90 वर्षीय पिता, छोटे भाई तथा सुपुत्री थीं। उनकी सेवा के लिए दो स्त्रियों और तीन पुरूषों को भैणी में रहने का आदेश दिया गया। गुरु जी की दुकान के मैनेजर तथा निजी सेवक को भी रहने दिया गया। इसके बाद इस सूचना के आधार पर कि भैणी में दो लाख रूपये और अगणित अस्त्र–शस्त्र किसी गुप्त स्थान में पड़े हैं, पंजाब सरकार के आदेश पर भैणी में दो बार बड़ी सख्ती से तलाशी कराई गई पर खजाने और हथियार कहीं नहीं मिले।

सद्‌गुरु राम सिंह जी को उनके सूबों तथा पटियाला के सरदार मंगल सिंह के साथ 10 मार्च, 1872 तक इलाहाबाद के किले में ही बन्द रखा गया। 8 मार्च को भारत–सरकार के सचिव ने पंजाब–सरकार के सचिव को लिखा कि गवर्नर–जनरल–इन–कौन्सिल की राय में राम सिंह को छोड़ने पर देश की शांति और स्थिरता भंग होने के पर्याप्त प्रमाण है।

उनके अतिरिक्त बाकी जो 10 सूबे हैं उनके विरूद्ध भारत–सरकार के पास पर्याप्त प्रणाम नहीं हैं कि वे वास्तव में खतरनाक व्यक्ति हैं।"

भारत सरकार ने 9 मार्च, 1872 को बर्मा के चीफ कमिश्नर को लिखा कि "राम सिंह को बर्मा में नज़रबन्द रखना है। तुम्हें आदेश दिया जाता है कि उन्हें लेकर अपनी हिरासत में रखो और गवर्नर जनरल–इन–कौन्सिल के आदेश तथा 1818 के रेग्युलेशन–तीन के अन्तर्गत बने नियमों के अनुसार उनसे व्यवहार करो।" गुरू राम सिंह को जलयान (समुद्री जहाज) द्वारा 11 मार्च, 1872 को बर्मा रवाना कर दिया गया। गुरु राम सिंह के साथ एक सेवक था। आदेश था कि गुरु राम सिंह के साथ कोई कठोरता न बरती जाए। उन्हें व्यायाम करने और स्वास्थ्य के लिये वायु सेवन की पूरी स्वतंत्रता दी जाए। 16 मार्च, 1872 को राम सिंह एक सेवक के साथ रंगून पहुंचे। वहां उनको सेण्ट्रल जेल में एक अलग कक्ष में रखा गया। उस स्थान के सम्बन्ध में बर्मा के जेलों के इन्सपेक्टर जनरल ने सूचना दी कि, राजबन्दी राम सिंह को मकान की ऊपर की मंजिल में रखा गया है। इसमें कुआं, रसोईघर और शौचालय हैं। उनको पलंग, कुर्सियां, पंखा आदि दिए गए हैं। वह जो चाहें करने को स्वतंत्र हैं और अपने घर में घूमने–फिरने को सर्वथा मुक्त हैं। रात में ताला नहीं लगाया जाता। गर्म मौसम में वह बाहर जमीन पर सोते हैं। उन पर केवल इतना ही प्रतिबन्ध है कि वह बाहर दुनिया से सम्पर्क नहीं रख सकते। उनके पास उनके एक सेवक के अतिरिक्त तीन और उच्च वर्ण के हिन्दू व्यक्ति सेवा के लिए रखे गए हैं। उनके पास एक गाय भी है। उनको हर प्रकार के भोजन की सुविधा है यद्यपि उनकी आवश्यकताएं साधारण हैं। उन पर तथा उनके सेवक नानू सिंह पर 40 रूपया मासिक का व्यय है। सब सामान पर कुल 165 रूपया व्यय किया गया है। उनका स्वास्थ्य अच्छा है परन्तु वह उदास रहते हैं। विशेषकर रात में गरमी की शिकायत करते हैं, यद्यपि जिस मकान में उनको रखा गया है वह इतना ठण्डा है जितना कोई भी और स्थान इस गर्म मौसम में रंगून में हो सकता है। उनके सेवक नानू सिंह ने लिखित वचन दे दिया है कि वह राम सिंह

के साथ रहने के लिए उन सब प्रतिबन्धों को स्वीकार करेगा जो सरकार उस पर लगाएगी।

जो प्रतिबन्ध सद्गुरू राम सिंह जी पर लगाए गए उनसे, जेल में रहते हुए, उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। उनको बुखार रहने लगा। इस पर बर्मा के चीफ कमिश्नर ने प्रस्ताव किया कि राम सिंह को उस भवन में रखा जाए जिसमें छावनी का डाकखाना (बंगला) था और जिसमें दिल्ली के भूतपूर्व बादशाह, बहादुरशाह ज़फर, को रखा गया था। भारत सरकार की स्वीकृति पर सद्गुरु राम सिंह को पांच महीने बाद सेण्ट्रल जेल रंगून से हटाकर उस बंगले में रखा गया। सद्गुरू राम सिंह 18 सितम्बर, 1880 तक इसी बंगले में रहे। गुरु के चेले लुक छिपकर उनके पास पहुंचते रहे और कुछ पत्र–व्यवहार भी होता रहा। जब सरकार इस पत्र–व्यवहार को न रोक सकी तो 21 सितम्बर को गुरु जी को नाव पर दक्षिण बर्मा में समुद्र तट पर स्थित मर्गोई स्थान पर पहुंचा दिया गया। समुद्र–तट पर उन्हें एक बंगले में ठहराया गया। उनके शिष्य वहाँ भी उनके पास पहुँच गए। बाद में सरकार ने घोषणा की कि 29 दिसम्बर,1885 को मर्गोई में उनका देहान्त हो गया। परन्तु सन 1886 की चीफ कमिशनर ब्रिटिश बर्मा की सरदार अतर सिहं भदौड़ के नाम एक टैलीग्राम है जिसमें उन्होने लिखा है कि हम गुरू राम सिहं को एक और टेबल आईलैड़ नाम के टापू पर ट्रांसफर कर रहे है जहॉ उनसे संपर्क करना असम्भव होगा। नामधारियों को यह विश्वास है कि सद्गुरू जी चमत्कारिक ढंग से कैद से निकल और अपने इसी शरीर में विद्यमान हैं तथा समय आने पर वह अवश्य प्रकट होंगे। इसी एक बात पर आज तक उनके अनुयायी उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चल रहे हैं। उनकी सद्गुरु राम सिंह में अटूट श्रद्धा और भक्ति है और इसी कारण उनका नाम प्रत्येक नामधारी कूके की जबान पर है।

कूका–विद्रोह का परिणाम

कूका आंदोलन के प्रवर्तक और नामधारी पंथ के संस्थापक सद्गुरु राम सिंह जी आदर्श समाज सुधारक थे। वह उच्चकोटि के देश भक्त, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और दक्ष संगठनकर्ता थे। उन्होंने स्वधर्म और स्वराज्य के लिए स्वदेशी और बहिष्कार के साधनों का अहिंसात्मक रूप में प्रयोग किया। व्यावहारिक कारणों से भी वह हिंसा के खिलाफ थे। वह भली भांति समझते थे कि अंग्रेज शासकों को सशस्त्र संघर्ष में परास्त करना उस समय सम्भव नहीं था। इसी कारण वह अपने संगठन को बहुत सम्भाल कर शांतिपूर्ण मार्ग पर चला रहे थे। उनके अनुपम और अद्‌भुत प्रभाव और कार्यशैली का यह एक आश्चर्यजनक उदाहरण था कि उन्होंने अमृतसर से बूचड़ों की हत्या करके आए अपने अनुयायियों को उनके अपराध स्वीकार करा के सहर्ष मृत्यु की सजा के लिए अमृतसर भेज दिया। इसके बाद जब सरदार हीरा सिंह और सरदार लहना सिंह के नेतृत्व में लगभग 124 कूके मलौध और मालेरकोटला पर आक्रमण करने चले तो उन्होंने हर प्रकार से अनुनय–विनय कर उन्हें रोकने का पूरा प्रयत्न किया। उन्होंने इसकी पूरी सूचना डिप्टी इन्सपेक्टर और डिप्टी कमिश्नर को दी। यह बड़ा साहस और बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य था। अंग्रेज अधिकारियों ने न तो इस कार्य की भली प्रकार सराहना की और न समय पर इस सूचना से लाभ उठाया। इसके विपरीत उन पर यह मिथ्यारोप लगाया कि वह अपने अनुयायियों को नियंत्रित न रख सके और न अमृतसर आदि की दुर्घटनाओं की सूचना सरकार को दी। बस इन्हीं दो आरोपों पर 1818 के रेग्युलेशन–तीन के अन्तर्गत उन्हें राज बंदी बनाकर देश निर्वासित किया गया।

इसमें कोई संदेह नहीं कि गुरु राम सिंह बड़े कुशल संगठनकर्ता थे। उनका पंजाब को 22 सूबों में बाँटना, अपनी डाक का पूरे सूबे में सफल आयोजन करना, रेल, सरकारी स्कूल, कचहरी और सरकारी नौकरियों तथा विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी तथा खादी का प्रचार उनकी बुद्धिमता और दूरदर्शिता का प्रमाण था। विदेशी शासन से मुक्ति के लिए 1920 से लेकर भारत के स्वतंत्र होने तक महात्मा गांधी ने

भी इसी कार्यक्रम को पूरा करने का प्रयास किया। इस कार्य में वह गांधीजी के प्रेरक व अग्रदूत थे।

उस महान और निर्दोष गुरु देश भक्त को अंग्रेज–सरकार ने राज बंदी बनाकर पंजाब से प्रयाग और प्रयाग से कलकत्ता होकर रंगून भेजा। जब वह कलकत्ता पहुंचे तो अंग्रेजों के समाचार–पत्र 'दि इंग्लिशमैन' ने अपने 14 मार्च, 1872 के अंक में यह समाचार प्रकाशित किया– "रामसिंह, कूका नेता, राज बंदी के रूप में सोमवार (12 मार्च) की सायं को कलकत्ता पहुंचे और शीघ्र ही रंगून भेज दिए गए। वह एक सेवक के साथ यूरोपियन पुलिस अधिकारी तथा देशी सिपाहियों की संरक्षता में लाए गए। वह 6 फुट से अधिक लम्बे और बहुत बूढ़े दीख पड़ते हैं। उनके बाल, दाढ़ी, मूंछें और कान के बाल सफेद हैं। हमें आशा है कि उनकी सावधानी से देखरेख की जाएगी।" इस समाचार से स्पष्ट है कि भारत–विरोधी अंग्रेजी पत्र ने भी सद्गुरू जी के प्रति सम्मान और सम्वेदनापूर्ण भाव व्यक्ति किए और सरकार को उनकी समुचित देखभाल करने की चेतावनी दी थी।

1872 में मुस्लिम बहावी आंदोलन अंग्रेजों के लिए भयंकर समस्या थी। कलकत्ता में चीफ जस्टिस नार्मन का दिन दहाड़े एक बहावी अब्दुल्ला ने इस कारण वध कर दिया था कि उसने बहावी नेता अमीरउद्दीन को दंड दिया था। इसी प्रकार अंडमान में शेर अली नामक बहावी बंदी ने लार्ड मेयो का वध किया था। दूसरी ओर हिन्दुओं और सिखों ने पंजाब में सद्गुरू राम सिंह जी के नेतृत्व में कूका–आंदोलन चलाया था जिसका बढ़ता हुआ प्रभाव अंग्रेजों को भयभीत कर रहा था। कुछ बूचड़ों (कसाईयों) को गोहत्या के अपराध में कूकों द्वारा मृत्यु के घाट उतारा गया। मलौध अैर मालेरकोटला में जो घटनाएं हुई उनके परिणामस्वरूप लुधियाना में डिप्टी कमिश्नर कोवन ने 49 कूकों को बिना मुकद्दमा चलाए केवल अपने आदेश से तोपों के सम्मुख खड़ाकर उड़वा दिया और अगले दिन मुकद्दमें का ढोंग रचकर अम्बाला के कमिश्नर फोरसाइथ ने 16 कूकों को तोपों से सम्मुख खड़ा कर उड़वा दिया। इस पूरे समाचार को पत्रों ने सविस्तार प्रकाशित किया और कोवन की बहुत कटु और तीव्र आलोचना की। एक पत्र ने लिखा :– "अंग्रेज राज की पूर्व में स्थिरता न्याय की

चट्टान पर ठहरी है। चाहे कुछ भी हो हम आशा करते हैं हमारे शासक इससे विचलित न होंगे। कूकों से पंजाब को गम्भीर भय हो सकता है, परन्तु न्याय के हितों की रक्षा उससे भी अधिक जरूरी है।"

जनवरी–फरवरी, 1872 के पत्रों में कूका–विद्रोह पर निरन्तर चर्चा हुई। एक पत्र ने लिखा :– "किसने कावन को अधिकार दिया था कि वह उन आदमियों को, जो उसके हाथ में थे और जिनके निकल भागने की कोई सम्भावना नहीं थी, तोपों से उड़वा दे? हमें आशा है कि भारत और इंग्लैड का जनमत इस प्रश्न का उत्तर माँगेगा और लेगा। ... क्या कोई भी यह सोचता है कि यह भारत या इंग्लैंड के हित में है कि अपने को मजबूत बनाने के लिए लोगों को भयभीत करके, तोपों के मुंह के सम्मुख खड़ा कर एक साथ सब को उड़ा दिया जाय?" क्या कोई सभ्य सरकार ऐसा कर सकती है? कोई भी सभ्य पाश्चात्य राष्ट्र ऐसा नहीं है जिसमें दीन से दीन का जीवन कानून की दृष्टि में उतना ही पवित्र न समझा जाता हो जितना कि राजा का ताज।"

"यदि भारत सरकार कावन के कृत्य का उत्तरदायित्व लेती है तो उसे अपने देश में जनमत के न्यायालय के समक्ष उत्तर देना पड़ेगा?"

"क्या हमारे पाठक विश्वास करेंगे कि 66 पुरूषों और दो स्त्रियों का इस बुरी तरह पीछा किया गया कि वह बिना भोजन के इतने थक गए और पस्त हो गए थे कि चार आदमियों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया?"

"एक समय था, जिसकी स्मृति अभी भी जीवित है, जब इंग्लैंड कम से कम इतने ही बड़े खतरे में था जितना कि पंजाब, जहाँ ये लोग तोप से उड़ाए गए। परन्तु इंग्लैंड में शासन था। किसी भी दशा में अपराधियों को किसी एक व्यक्ति की इच्छा पर दंड नहीं दिया जा सकता था।"

"कहा जाता है कि कावन ने अपने उत्तरदायित्व पर जो किया वह गदर के वीरों के कृत्यों के समान था। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो इन दोनों परिस्थितियों में कोई समानता नहीं। कावन के पास शानदार अंग्रेज सेना थी। कुछ ही घंटों में वह उन आदमियों पर मुकदमा चलाने

का अधिकार प्राप्त कर सकता था। उसने उन पर कोई मुकदमा नहीं चलाया।''

''जिन्होंने यह नर–हत्याकाण्ड किया उनके इस कृत्य को किसी भी ज्ञात अथवा कल्पित बातों से उचित नहीं ठहराया जा सकता। यह तो चीन के पथभ्रष्ट अधिकारियों द्वारा किए गए पाश्विक अत्याचार जैसा था।''

इस प्रश्न पर ब्रिटिश पार्लियामेंट में भी प्रश्न उठे। बहुत वादविवाद के पश्चात ग्राण्ट डफ, अण्डर सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया, ने अंतिम रूप से माना कि – ''किसी प्रकार का कोई मुकदमा नहीं चलाया गया।'' (इस स्तर पर सदन में बहुत आश्चर्य प्रकट किया गया।)

1 मार्च, 1872 को हाउस आफ कामन्स में कूका विद्रोह पर प्रश्नोत्तर में ग्राण्ट डफ ने बड़े दुख से सभी घटनाओं की सत्यता को स्वीकार किया। अन्त में उसने बताया कि ''जब 19 जनवरी को घटनाओं की सूचना मुझे मिली तो मैंने लेफ्टिनेण्ट–गवर्नर पंजाब को तार दिया : ''अपने स्पष्ट आदेश के बिना कूकों का फौरी वध किया जाना रोक दो (हर्ष ध्वनि)।'' फिर उन्होंने कहा कि स्थल पर विशेष जाँच के आदेश दिए गए हैं। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट–इन–काउंसिल ने भारत–सरकार को सूचित कर दिया है कि पंजाब के लेफ्टिनेण्ट–गवर्नर की रिपोर्ट की व्यग्रता से प्रतीक्षा की जा रही है।

''जो कुछ कावन ने बिना मुकदमा चलाए किया उससे सिद्ध होता है कि यह अत्यधिक बुद्धिहीनता और क्रूरता का ऐसा काम था जैसा कभी भी किसी अंग्रेज ने भारत में नहीं किया। मि. फोरसाइथ ने इस कृत्य का समर्थन किया। भारत के स्वतंत्र पत्रकारों और मित्रों ने अपना उचित कर्तव्य समझा कि 'इस कृत्य की भर्त्सना की जाए'।''

इन तमाम आलोचनाओं और जनमत के रोष का केवल इतना ही परिणाम निकला कि सरकारी जांच–पड़ताल के बाद लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर कावन को गवर्नर–जनरल–इन–कौंसिल के आदेशानुसार नौकरी

से हटा दिया गया। पर उन्हें 300 रूपया मासिक पेंशन दी गई। अम्बाला के कमिश्नर फोरसाइथ को डाँट–फटकार के बाद सूबा अवध में उसी पद और वेतन पर तबादला कर दिया गया।

इस पूरे मामले पर सर हेनरी काटन का मत था :– "मैंने अपनी सेवा–अवधि में इतने भड़काने वाले भयानक दंड नहीं देखे। ऐसे व्यक्ति बहुत से हैं जिन्होंने मेरी तरह यह समझा और यह विचार रखते हैं कि भारत सरकार का निर्णय बहुत ही नाकाफी था।"

26 मार्च, 1872 को सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया की ओर से भारत सरकार को यह पत्र प्राप्त हुआ :–

"मैं सन् 1818 के एक्ट 3 के अधीन गुरू राम सिंह और 10 प्रभावशाली सूबों को नजरबंद किए जाने की स्वीकृति प्रदान करता हूं।"

"मैं कावन, डिप्टी कमिश्नर लुधियाना के मुअत्तल किए जाने की स्वीकृति देता हूँ। 49 कूका विद्रोहियों के मारे जाने के उनके कृत्य की पूरी जांच हो। मैं जांच की रिपोर्ट के परिणाम और भारत सरकार की राय की प्रतीक्षा करूंगा।"

लेकिन सरकार तो कूका नाम को ही मिटाने पर तुली हुई थी। दमन नीति के कारण अत्याचार कल्पनातीत स्थिति को पहुंच गया था। सद्‌गुरु के उत्तराधिकारी और घरवालों पर जो अत्याचार किए गए उसकी कथा भयानक और विस्तार अनन्त है।

भैणी के प्रवेश–द्वार पर पुलिस चौकी तैनात कर दी गई। नामधारियों के गुरू–दर्शन पर प्रतिबंध लगा दिया गया। संक्षेप में भैणी को एक प्रकार से बन्दीगृह में परिवर्तित कर दिया गया। 6 वर्ष तक किसी भी सिक्ख को भैणी नहीं जाने दिया गया। उसके बाद सिखों को गुरूद्वारे में दर्शन की छूट तो मिली परन्तु उस पर भी इतने प्रतिबंध लगाए गए थे कि अनेकों लोग बिना दर्शन किए ही लौट जाने को विवश हो जाते थे। जो दर्शन किए बिना नहीं जाते उन्हें अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता था।

प्रत्येक नामधारी कूका, विद्रोही माना जाता था। उनको अपने–अपने गाँव में नजरबन्द कर दिया गया था। नगरों, कस्बों और ग्रामों की धर्मशालाओं पर सरकारी रिपोर्टर नियुक्त थे जो कूकों के आवागमन और कार्यों की रिपोर्ट देते थे। पांच से अधिक कूकों का किसी भी स्थान पर एकत्रित होना वर्जित था। सारे पंजाब में दीवान होना असम्भव हो गया। अखंड पाठ करने और कराने के अपराध में कूकों को पांच से सात वर्ष तक के कारावास का दण्ड दिया गया। जुर्माने कठोरता से वसूल किए गए। कुछ का तो कारावास में ही प्राणांत हो गया।

गुरू राम सिंह जी के अलावा, बहुत से सूबे भी पंजाब से निकाल दिए गए। कुछ चुनार और असीरगढ़ के किलों में और कुछ मौलमीन (बर्मा) और अदन में रखे गए। इनमें से चार की जेल में ही मृत्यु हुई। यद्यपि भारत सरकार चाहती थी कि इन पर मुकदमा चलाया जाए पर पंजाब सरकार ने इसका विरोध किया। उसका कहना था कि उनके खिलाफ गवाह पेश करना प्रायः असम्भव होगा।

गुरू जी के देश के निर्वासन के बाद भी कूके सक्रिय बने रहे। अप्रैल 1879 और अप्रैल 1881 के बीच गुरू राम सिंह का एक सूबा, गुरुचरण सिंह कूका, मध्य एशिया में रूसी अधिकारियों से मिला। सरकारी कागजात से पता चलता है कि उसने गुरु राम सिंह के उत्तराधिकारी बुद्ध सिंह के संदेश रूसियों को पहुँचाए और उनके उत्तर प्राप्त किए। गुरुचरण सिंह का मुख्य उद्देश्य नामधारी आन्दोलन के लिए रूसी सहायता प्राप्त करना था। रूसियों से उत्तर प्राप्त कर एक कूका गुरु रामसिंह जी से मिलने बर्मा गया था। बिशन सिंह नामक एक कूके ने भी रूसियों से सम्पर्क स्थापित किया था।

1868–69 में नामधारी, कश्मीर की सेना में भर्ती हुए। अक्टूबर 1869 तक 200 से 250 कूके भर्ती हो चुके थे। कूका–रेजीमेंट के विषय में जानकारी हासिल करने के लिए भारत सरकार ने एक अधिकारी 1869 के अन्त में जम्मू भेजा था। बाद में अंग्रेजों के प्रभाव में आकर महाराजा ने कूकों को सेना से निकाल दिया।

1869 में कूकों का एक सरदार नेपाल के प्रधानमन्त्री राणा जंगबहादुर से मिला। राणा ने गुरु राम सिंह जी को 500 रूपये, एक तिब्बती घोड़ा, दो खुखरियां, एक दुशाला और एक माला उपहार में भेजे। गुरु जी ने भी राणा के अनुरोध पर कुछ जानवर भेजे। 1871 में अग्रेंजों ने नेपाल पर दबाव डाला कि वह नामधारियों से कोई सम्पर्क न रखें। राणा ने जो नामधारी सिक्ख अपनी सेना के प्रशिक्षण के लिए रखे थे वे हटा दिए गए।

पंजाब सरकार ने भारत सरकार को अपने 2 अप्रैल, 1872 के एक पत्र में लिखा था कि सब स्त्रोतों से प्राप्त सूचनओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि कूकों ने होली, दीपावली या बैसाखी के सम्मेलनों में या किसी अन्य उचित अवसर पर विद्रोह करने का निश्चय किया था। विद्रोह के लिये सियालकोट, गुजरांवाला के जिलों, (जो अब पाकिस्तान में चले गये हैं।) अम्बाला कमिश्नरी और सतलुज पार के राज्यों में भिन्न–भिन्न समय नियत किए गए थे। साथ ही यह भी घोषित किया था कि विद्रोह का प्रारम्भ अमृतसर या आनन्दपुर में होगा। विद्रोह आरम्भ करने का कोई स्थान नियत नहीं है। उपयुक्त समय की प्रतीक्षा है।

''कूका सम्प्रदाय के विद्रोह को रोकने के लिए पंजाब सरकार ने पर्याप्त प्रबंध इस सीमा तक किए कि कुछ महीनों में ही कूकों ने पंजाब के सब जिलों में अपने ठीक–ठीक नाम और पते बताने ही छोड़ दिए। इस पर भी ऐसे कूके पंजाब में पर्याप्त संख्या में हैं जो स्वयं अपने ,को कूका स्वीकार करते हैं।

''कूका पंथ कें प्रमुख नेताओं को प्रान्त से बाहर निकाल दिया गया है। जो प्रभावशाली व्यक्ति हैं उनकी गतिविधियों पर सावधानी रखी जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में जैलदारों और नम्बरदारों को उनके सम्बन्ध में सूचना देने का आदेश है।

''पूरे प्रान्त में कहीं भी कूके एक समय और एक स्थान पर पांच से अधिक एकत्रित नहीं हो सकते। कुल्हाड़ी, बरछे, लाठियां और अन्य अस्त्र–शस्त्र बिना आज्ञा के सार्वजनिक स्थानों पर ले जाना वर्जित है। पूरे सम्प्रदाय के लिये देख–रेख और सूचना देने की पूर्ण व्यवस्था कर दी

गई है। अब ऐसा कोई भी छोटे से छोटा या महत्वपूर्ण आंदोलन नहीं चल सकता जिसकी सूचना सरकार को तुरन्त न मिल जाए।

''वाइसराय कमांडर–इन–चीफ भी इस राय से सहमत ही हैं कि सिक्खों को हिन्दुस्तानी सेना से निकाल दिया जाए और भविष्य में उनको भर्ती न किया जाए और यही नियम पुलिस पर भी लागू होगा। इसी के अनुसार नामधारी सिक्खों के लिए यह आदेश दिया गया है कि उन्हें सेना और पुलिस से निकाल दिया जाए तथा भविष्य में उनकी भर्ती पूर्णतया बंद कर दी जाए।''

पंजाब और भारत सरकार ने बड़ी सतर्कता और सावधानी तथा कठोरता और क्रूरता से नामधारी कूका आंदोलन को दबाने और फिर से किसी भी प्रकार से न उभरने देने का प्रयत्न किया। उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि विदेशी सरकार के क्रूरतापूर्ण और असभ्य तथा पाश्विक दमन से वीर कूकों की भावना, साहस और लगन मिट न सकी और 1947 तक स्वतंत्रता संग्राम में निरन्तर भाग लेते रहे।

उनकी सराहना करते हुए 1935 में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बड़े मार्मिक शब्दों में यह आशा और विश्वास प्रकट किया थाः–

''श्री सद्‌गुरू राम सिंह जी ने अपनी मातृ भूमि की स्वतन्त्रता के लिए आज से 75 वर्ष पहले जो महान गौरवशाली प्रयास किया था उसके महत्व से कोई भी भारतीय इन्कार नहीं कर सकता। कांग्रेस ने आपके बताए और दिखाए हुए मार्ग पर चलकर शानदार सफलताएं प्राप्त की हैं। 75 वर्षों के समय बीत जाने पर भी यह कार्यक्रम पुराना नहीं हुआ है। इसके प्रयोग प्रारम्भ करने में आपने बड़ी कठिनाइयों और कष्टों का सामना किया था।''

''मुझे विश्वास है कि यदि प्रत्येक सिख उस मार्ग पर जो आपने दिखाया था, चल पड़े तो भारतीय स्वतन्त्रता युद्ध में बेहद सरगर्मी पैदा हो जाए और आश्चर्य नहीं कि सिक्खों की आजमाई हुई वीरता के कारण इस शानदार रवायतों वाले देश की जंजीरें बहुत जल्द टूट जाएं।''

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के उद्गार सद्गुरु राम सिंह जी और उनके देशव्यापी क्रांतिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में बड़े प्रेरक और उत्साहवर्धक हैः–

''गुरू राम सिंह जी के फहराए हुए आजादी के झण्डे के नीचे नामधारी कूकों ने जो कुर्बानियाँ की हैं, उन पर देश सदा गौरव करेगा। अब फिर भारतीयों के देशप्रेम की परीक्षा होने वाली है। पौनी सदी से अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का अनुभव रखने वाले नामधारी वीर कूकों से यही आशा है कि वह स्वतन्त्रता का झंडा उठाकर आगे–आगे बढ़ते दिखाई देते रहेंगे और दूसरे देशवासियों को भी बलिदान के लिए उत्साहित करते रहेंगे। गुरू राम सिंह जी भारत में अहिंसात्मक असहयोग के सर्वप्रथम नेता रहे।''

जहाँ उपरोक्त दो महान् देशभक्तों के उद्गार सद्गुरु राम सिंह जी के सम्बन्ध में उद्धृत किए गए हैं वहाँ उनके संम्बन्ध में उनके विरोधी सरकारी पक्ष का वक्तव्य भी महत्वपूर्ण है। अम्बाला के भूतपूर्व कमिश्नर जे.डब्ल्यू. मैकनब ने 4 नवम्बर, 1871 को कूका आन्दोलन के सम्बन्ध में अपनी विस्तृत रिपोर्ट में सरकार को लिखा :–

''कूका आन्दोलन के नेता का मन्तव्य प्रारम्भ में चाहे जो कुछ भी रहा हो, परन्तु अब तो उनका लक्ष्य राजनैतिक है। वह एक ऐसे पंथ का अद्वितीय नेता है जो अपने स्वभाव के अनुसार खालसा राज्य को पुनःस्थापित करने का उद्देश्य रखने के कारण अंग्रेजों का शत्रु है। पहले राम सिंह को गुरु नानक जी का अवतार समझा जाता था पर अब उसे योद्धा–गुरु गोविन्द सिंह जी का रूप माना जाता है।''

अमर शहीद सरदार भगत सिंह यह शेयर कहा करते थे –
''वे सूरते इलाही किस देश बसतियां हैं,
अब जिनके देखने को आंखें तरसतियां है।''

कूका लोग अब भी यह विश्वास करते हैं कि उनके गुरू अवश्य प्रकट होंगे।

पुस्तक सूची

1. क्रांतिकारी सद्‌गुरु राम सिंह : ले. संत निधान सिंह आलम, प्रकाशक – नामसंगम, दिल्ली।
2. गुरु राम सिंह एण्ड दि कूका सिख (डाकूमेण्ट्स) (अंग्रेजी), कम्पाइल्ड बाई नाहर सिंह एम.ए.। प्राप्ति स्थान – अमृत बुक डिपो कं., कनाट सर्कस, नई दिल्ली।
3. विप्लव यज्ञ की आहुतियां, सम्पादक एवं प्रकाशन बटुकनाथ अग्रवाल, क्रांतिकारी प्रकाशन, लाजपत रोड, मिर्जापुर।
4. आर्म्ड स्ट्रगल फार फीडम (अंग्रेजी) : ले. साहित्याचार्य श्री बाल शास्त्री हरदास, प्रकाशक – काल प्रकाशन, पूना।
5. ''कूका रिवोल्ट'' (अंग्रेजी) : ले. एम. एम. अहलुवालिया।
6. ''दी फ्रण्टियर मेल'' अंग्रेजी साप्ताहिक में लेख ''सिख रिवोल्ट अगेन्स्ट ईस्ट इंडियन कम्पनी।''
7. ''आर्म्ड कन्फालिक्ट विद दि ब्रिटिश'' : ले. रारोज आचार्य, हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड (अंग्रेजी), कलकत्ता के 'कांग्रेस नम्बर' में।
8. ''रिवाल्यूशनरी मूवमेण्ट इन इंण्डिया'' (अंग्रेजी), ले. चमनलाल आजाद, दिल्ली।
9. कूका पेपर्स (अंग्रेजी)।
10. ''सोर्स मैटीरियल (अंग्रेजी), नेशनल आरकाइव्ज आफ इंडिया, नई दिल्ली।
11. दि अदर साइड आफ द मैडल (अंग्रेजी), ले. एडवर्ड थाम्पसन।
12. कूका आउटब्रेक (अंग्रेजी), प्रकाशन–पार्लियामेण्ट, इंग्लैण्ड।
13. गुरूद्वारा रिफार्म मूवमेण्ट एण्ड सिख अवेकनिंग (अंग्रेजी), लेखक प्रो. रूचीराम साहनी।
14. रणजीत सिंह (अंग्रेजी), लेखक सर एल ग्रिफिन।
15. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ द सिख (अंग्रेजी), लेखक सी. एच. पैन।



अमर शहीद बिशन सिंह

12 वर्षीय बालक बिशन सिंह ने डी.सी कावन की दाढ़ी को झपटा तथा सिपाहियों ने तलवार से गर्दन काट दी। (शहीदी : 17 जनवरी 1872 ई:, मलेरकोटला)

सभ अपने हैं हम सभ के हैं, कितना बडा अहिसान है सिख गुरूओं को इस देश के ऊपर और दुनिया के ऊपर। मैं तो अपने आप को केसधारी ना सही, सहिजधारी सही, गुरू नानक के चेलों में मानता हूं। और सभ सिख गुरूओं को मानता हूं। मैं तो अपने आपको सिख मानता हूं सहिजधारी **गुरू राम सिंह मेरे दादा गुरू हैं** क्योंकि महात्मा गांधी मेरे गुरू हैं और महात्मा गांधी के गुरू सतगुरू राम सिंह हैं। महात्मा गांधी ने नान वायलैंस का आईडीया गुरू राम सिंह से ही लिया था।

(पंडित सुंदर लाल प्रसिद्व स्वतंत्रता सैनानी व इतिहासकार)

अपनी पसलियों को जलाकर कूकों ने उस शमा को रोशन किया जिससे शांति, स्वतंत्रता लोकतंत्र तथा ऐकता को आलौकिक प्रकाश प्राप्त हुआ।

(महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर)



नामधारी शहीदी स्मारक, मलेरकोटला